वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

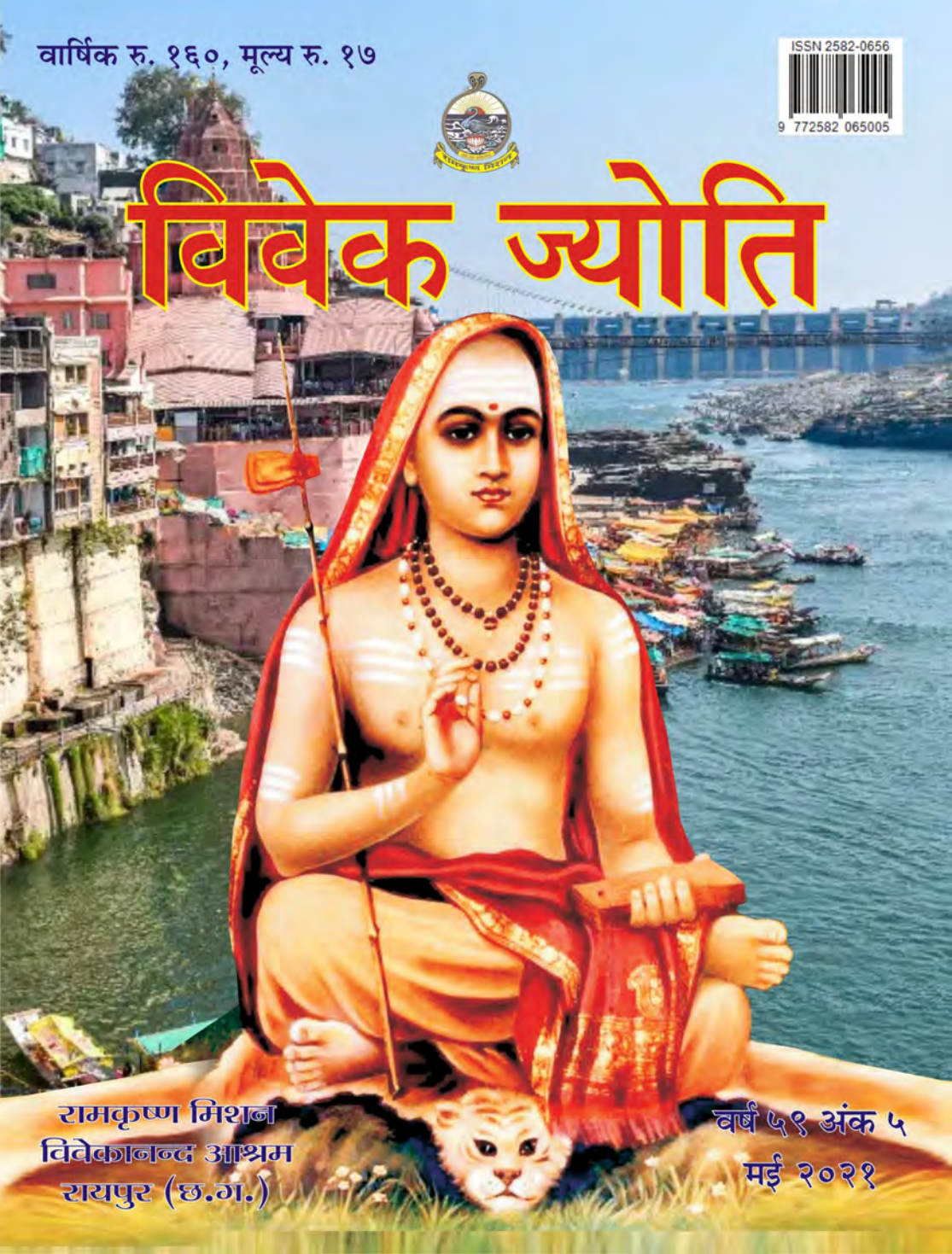

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ५९ अंक ५
मई २०२१

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मई २०२१; वैशाख, सम्वत् २०७८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५९
अंक ५

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. श्रीशङ्करदेशिकाष्टकम् (तोटकाष्टकम्) १९७
२. सम्पादकीय : स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में भगवान बुद्ध और श्रीशंकराचार्य १९८
३. भक्तियोग (स्वामी विवेकानन्द) २०१
४. (भजन एवं कविता)
श्रीरामकृष्ण-स्तुति (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा)
अपने रंग में रंग दो (मोहन सिंह मनराल)
साधो ! पागल हुआ जमाना
(भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') २०६
५. (बच्चों का आँगन) देहं नाहं कोऽहं सोऽहं
(श्रीधर कृष्ण) २०७
६. आध्यात्मिक जिज्ञासा (६५)
(स्वामी भूतेशानन्द) २०८
७. स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन में आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना
(डॉ. सूरजभानसिंह चारण) २११
८. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) २१६
९. रामराज्य का स्वरूप (२/३)
(पं. रामकिंकर उपाध्याय) २१७
१०. सत्यसूक्तम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) २२१
११. पुस्तक समीक्षा २२१
१२. (युवा प्रांगण) असफलता को सफलता में बदलें (स्वामी ओजोमयानन्द) २२२
१३. (प्रेरक लघुकथा) कैसे निबहें निबल जन जामें एकता नाहिं
(डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर) २२६
१४. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (४१)
(स्वामी अखण्डानन्द) २२७
१५. प्रश्नोपनिषद् (१२)
(श्रीशंकराचार्य) २२९

ISSN 2582-0656

१६. सारगाछी की स्मृतियाँ (१०३)
(स्वामी सुहितानन्द) २३०
१७. जीवन में सच्ची सफलता और उसका रहस्य
(स्वामी सत्यरूपानन्द) २३२
१८. गीतातत्त्व-चिन्तन – १७ (नवम अध्याय)
(स्वामी आत्मानन्द) २३३
१९. साधुओं के पावन प्रसंग (२९)
(स्वामी चेतनानन्द) २३६
२०. समाचार और सूचनाएँ २३९

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

श्रीशंकराचार्य जी का माँ नर्मदा और बाबा ओंकारेश्वर के साथ विशेष सम्बन्ध है। इसी को आवरण पृष्ठ में दर्शाया गया है।

मई माह के जयन्ती और त्यौहार

१४ अक्षय तृतीया
१७ श्रीशंकराचार्य
२६ बुद्ध पूर्णिमा

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री मनमोहन अग्रवाल, जवाहर नगर, रायपुर (छ.ग.)	१०००/-
श्री कार्तिक श्रेया पाण्डेय, वेस्ट विनोद नगर, दिल्ली	१२००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६४९.	श्री अनिल कुमार सिंह, जमबाल्या रोड, राजकोट (गुज.)	लाईब्रेरी, विवेकानन्द केन्द्र विद्यालय, बलीजान, पापुमपर (अ.प्र.)
६५०.	,, ,,	लाईब्रेरी, विवेकानन्द केन्द्र विद्यालय, जयरामपुर (अरुणाचल प्रदेश)
६५१.	,, ,,	लाईब्रेरी, विवेकानन्द केन्द्र विद्यालय, जिर्डिन, (अरुणाचल प्रदेश)
६५२.	ललित कुमार, कुंद, जिला-रेवारी (हरियाणा)	लाईब्रेरी, विवेकानन्द केन्द्र विद्यालय, अमलिंग (अरुणाचल प्रदेश)

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

SMS: **SOLAR to 58888**

Toll Free
1800 233 4545

www.sudarshansaur.com
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५९ मई २०२१ अंक ५

श्रीशङ्करदेशिकाष्टकम् (तोटकाष्टकम्)

श्रीशंकराचार्य

विदिताखिलशास्त्रसुधाजलधे महितोपनिषत्कथितार्थनिधे।
हृदये कलये विमलं चरणं भव शङ्करदेशिक मे शरणम्।।१।।

भावार्थ : जिन्हें समस्त शास्त्ररूपी अमृतसमुद्र ज्ञात हैं तथा जो उपनिषदों द्वारा रचित (निश्चित) अर्थों के महान् निधि हैं, ऐसे आपके निर्मल चरणों को मैं अपने हृदय में धारण करता हूँ। हे श्रीशंकराचार्यजी ! आप मेरे शरणस्थल हों।

करुणावरुणालय पालय मां भवसागरदुःखविदूनहृदम्।
रचयाखिलदर्शनतत्त्वविदं भव शङ्करदेशिक मे शरणम्।।२।।

भावार्थ : हे करुणासागर ! मुझ भवसागर के दुखों से सन्तप्त हृदयवाले का आप पालन कीजिए तथा मुझे समस्त दर्शनों के तत्त्व का ज्ञाता बना दीजिए। हे श्रीशंकराचार्यजी! आप मेरे शरणस्थल हों।

भवता जनता सुहिता भविता निजबोधविचारणचारुमते।
कलयेश्वर जीवविवेकविदं भव शङ्करदेशिक मे शरणम्।।३।।

भावार्थ : हे स्वरूप-बोध के विचार द्वारा सुन्दर बुद्धिवाले! आप से ही यह सारी जनता लाभान्वित होगी। आप मुझे ईश्वर और जीव के वास्तविक स्वरूप का ज्ञाता बना दीजिए। हे श्रीशंकराचार्यजी ! आप मेरे शरणस्थल हों।

भव एव भवानिति मे नितरां समजायत चेतसि कौतुकिता।
मम वारय मोहमहाजलधिं भव शङ्करदेशिक मे शरणम्।।४।।

भावार्थ : मेरे चित्त में सदा यही कौतुक होता है कि आप साक्षात् भगवान शिव ही हैं। अतः मेरे मोहरूपी महासमुद्र का निवारण कीजिए। हे श्रीशंकराचार्यजी ! आप मेरे शरणस्थल हों।

सुकृतेऽधिकृते बहुधा भवतो भविता समदर्शनलालसता।
अतिदीनमिमं परिपालय मां भव शङ्करदेशिक मे शरण्।।५।।

भावार्थ : अनेक बार सत्कर्म करने पर ही आपश्री (के उपदेश) से मुझमें समदर्शन (सर्वात्मभाव) की लालसा (जिज्ञासा) होगी। अतः आप इस अत्यन्त दीन प्राणी का परिपालन कीजिए। हे श्रीशंकराचार्यजी ! शरणस्थल हों।

शेष भाग पृष्ठ २०५ पर

सम्पादकीय

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में भगवान बुद्ध और श्रीशंकराचार्य

सनातन भारतीय संस्कृति-सरिता की अखण्ड धारा अनादि काल से प्रवाहित होती चली आ रही है और अपनी स्निग्ध शुद्ध शीतल सलिल से जन-मानस को आप्लावित कर उसकी पिपासा शान्त कर रही है, उसे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से तुष्ट-पुष्ट कर रही है। लेकिन इस अखण्ड धारा को जब कभी कुप्रथाओं, कुसंस्कारों और कालक्रमात् दोष रूपी विशाल वृक्षों ने बाधा डालकर उसकी गति को बाधित करने का प्रयास किया, तब कोई-न-कोई महापुरुषों के रूप में प्रबल ज्वार ने आकर उसे बहाकर पुन: धारा को अविरत निरन्तर प्रवाहित होने का मार्ग प्रशस्त किया। किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है –

धरा जब-जब विकल होती, मुसीबत का समय आता।
किसी भी रूप में कोई महामानव चला आता।।

स्वामी विवेकानन्द सभी धर्मों, सभी पन्थों, सभी सम्प्रदायों और सभी मतों का सम्मान करते थे। जाति-धर्म के रणानल में जलते विश्व को सर्वधर्मसमन्वय का सन्मार्ग सर्वप्रथम स्वामी विवेकानन्द ने ही दिखाया था। अपने गुरु श्रीरामकृष्ण देव की वाणी – 'अनन्त मत अनन्त पथ', 'सभी धर्म सत्य हैं', 'ईश्वर के अनन्त नाम और अनन्त रूप हैं' 'एक ही ईश्वर भिन्न-भिन्न देशों में, भिन्न-भिन्न समय में, भिन्न-भिन्न नामों और रूपों में पूजे जाते हैं' आदि के अनुगामी स्वामीजी ने इन्हें अपने जीवन में आत्मसात् किया था, इनकी बौद्धिक स्पष्ट अवधारणा और हार्दिक अनुभूति की थी, तत्पश्चात् उन्होंने विश्व के धर्म-मंच से घोषणा की थी – ''इस धर्म महासभा ने जगत् के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है, जिसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय विशेष की बपौती नहीं है और प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं उन्नत-चरित्र नर-नारियों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्य सारे धर्म नष्ट हो जाएँगे और केवल उसका ही धर्म जीवित रहेगा, तो मुझे उस पर अपने हृदय के अन्तस्तल से दया आती है और मैं उसे स्पष्ट कह देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा होगा – सहायता करो, लड़ो मत। परभाव ग्रहण करो, परभाव विनाश नहीं। समन्वय और शान्ति, मतभेद और कलह नहीं !''[१]

ऐसे उदात्तहृदयचेत्ता स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि से भगवान बुद्ध और श्रीशंकराचार्य कैसे बच सकते हैं ! जबकि बचपन में स्वामीजी को भगवान बुद्ध का दर्शन भी हुआ था और भगवान शंकराचार्य के प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी, क्योंकि वे स्वयं युगाचार्य थे। एक युगाचार्य ही दूसरे युगाचार्य को समझ सकता है। प्रस्तुत निबन्ध में हम यह देखने और समझने का प्रयत्न करेंगे कि स्वामीजी की इन दो महान पुरुषों के प्रति क्या अवधारणा थी, वे इन्हें किस रूप में देखते थे। स्वामी विवेकानन्द के विचारों का अनुशीलन करने से हमें ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध के प्रति उनकी अत्युच्च धारणा थी। वे उन्हें अवतार घोषित करते हुए अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए कहते हैं – ''हमारे समाज के दो प्रबल अंग ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों, राजाओं तथा पुरोहितों के बीच विवाद आरम्भ हुआ था। एक हजार वर्ष तक जिस विशाल तरंग ने समग्र भारत को सराबोर कर दिया था, उसके सर्वोच्च शिखर पर हम एक अन्य महामहिम मूर्ति को देखते हैं और वे हमारे शाक्यमुनि गौतम हैं।... हम उनको ईश्वरावतार समझकर उनकी पूजा करते हैं, नैतिकता का

इतना बड़ा निर्भीक प्रचारक संसार में दूसरा कोई नहीं हुआ, कर्मयोगियों में सर्वश्रेष्ठ स्वयं श्रीकृष्ण ही मानो शिष्य रूप से अपने उपदेशों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये आविर्भूत हुए।''[२]

श्रीमद्भागवतपुराण में भी बुद्धावतार का उल्लेख मिलता है। व्यासजी लिखते हैं –

सः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाय।
बुद्धो नाम्ना जनसुतः कीकटेषु भविष्यति।।१/३/२४।

– उसके बाद कलियुग आ जाने पर (मगध देश में) देव-द्वेषी दैत्यों को मोहित करने के लिये अंजन के पुत्ररूप में आपका बुद्धावतार होगा।

भगवान बुद्धदेव

भगवान राम का अवतार-प्रयोजन असुर-विनाश और धर्मस्थापन था। भगवान श्रीकृष्ण का अवतार-लक्ष्य कंसादि राक्षसों का वध, धर्मस्थापन और लोक-कल्याण था। यदि भगवान बुद्ध भी अवतार हैं, तो अन्य अवतारों की भाँति उनका भी कोई उद्देश्य होगा। उनका क्या उद्देश्य था? स्वामीजी अपनी व्यक्तिगत भावाभिव्यक्ति के साथ कहते हैं – ''मैं आजीवन बुद्ध का परम अनुरागी रहा हूँ। ... अन्य किसी की अपेक्षा मैं उस चरित्र के प्रति सबसे अधिक श्रद्धा रखता हूँ – वह साहस, वह निर्भीकता, वह विराट प्रेम ! उनका आविर्भाव मनुष्य के कल्याण के लिये हुआ था।''[३]

बुद्ध के मानव-कल्याण के उद्देश्य का प्रतिपादन करते हुए स्वामीजी आगे कहते हैं – ''लोग अपने लिये ईश्वर की, सत्य की खोज कर सकते हैं, परन्तु उन्होंने अपने लिये सत्य का ज्ञान प्राप्त करने की चिन्ता भी नहीं की। सत्य की खोज उन्होंने इसलिये की कि लोग दुख से पीड़ित थे। उनकी सहायता कैसे की जाय, यही उनकी एकमात्र चिन्ता थी। आजीवन उन्होंने अपने लिये एक विचार तक नहीं किया।''[४]

वास्तव में बुद्ध ने जीवनभर मानवहित का ही चिन्तन, अनुसन्धान और कार्य किया। मानव की पीड़ा देखकर ही तो उनके मन में वैराग्य हुआ और उन्होंने उस पीड़ा की आत्यन्तिक निवृत्ति के अनुसन्धान में राजसी वैभव का त्यागकर वन को प्रस्थान किया। उन्होंने बीहड़ वन में तप द्वारा मन्थन कर चार आर्यसत्यों का अन्वेषण और 'निर्वाण' का अनुसन्धान किया। मानव की पीड़ा से व्यथित बुद्ध की हार्दिक पीड़ा ने उन्हें करुणावतार बना दिया। बुद्ध के मन में जीवों के प्रति ऐसी करुणा थी कि एक तीर लगे हंस को बचाने के लिये उन्होंने अपने भाई देवव्रत से विवाद कर उस हंस के प्राण बचाए। वे एक मेमने को बचाने के लिये अपना अमूल्य जीवन तक देने को तत्पर थे। स्वामी विवेकानन्द उस घटना का उल्लेख करते हुए कहते हैं – ''जगत में वे (बुद्ध) ही ऐसे थे, जो यज्ञों में पशुबलि रोकने के लिये, किसी प्राणी की जीवन-रक्षा हेतु अपना जीवन भी न्यौछावर करने को तत्पर रहते थे। एक बार उन्होंने एक राजा से कहा – 'यदि किसी निरीह पशु की बलि देने से तुम्हें स्वर्ग-प्राप्ति हो सकती है, तो मनुष्य की बलि देने से और भी उच्च फल की प्राप्ति होगी। राजन् ! उस पशु के पाश काटकर मेरी बलि दे दो, इससे शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके।' ''[५]

भगवान बुद्ध के जीवों के प्रति प्रेम के कारण ही उनका धर्म सम्पूर्ण एशिया में द्रुत गति से फैला। स्वामीजी कहते हैं – ''बुद्ध का धर्म द्रुत गति से फैला। ऐसा उस अद्भुत प्रेम के कारण हुआ, जो मानवता के इतिहास में पहली बार एक विशाल हृदय से प्रवाहित हुआ और जिसने अपने को केवल मानव मात्र की ही नहीं, प्राणीमात्र की सेवा में अर्पित कर दिया था, ऐसा प्रेम जिसे जीवमात्र के लिये मुक्ति का एक मार्ग खोज निकालने के अतिरिक्त किसी अन्य बात की चिन्ता नहीं थी।''[६]

यद्यपि स्वामीजी भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों को पूर्णतः नहीं मानते थे, तथापि उनके प्रति उनकी श्रद्धा असीम थी। स्वामीजी कहते हैं – ''मेरा बुद्ध के कई सिद्धान्तों से मतभेद है, किन्तु यह मेरे उस महान आत्मा के चरित्र एवं भाव-सौन्दर्य के दर्शन में बाधक नहीं है। बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतः तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं। ऐसे अन्य कई महापुरुष थे, जो अपने को ईश्वर का अवतार कहते थे और विश्वास दिलाते थे कि जो उनमें श्रद्धा रखेंगे, वे स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे। पर बुद्ध के अधरों पर

अन्तिम क्षण तक यही शब्द थे, 'अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्नों से होगी, अन्य कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता। स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो।' अपने सम्बन्ध में भगवान बुद्ध कहा करते थे, 'बुद्ध शब्द का अर्थ है आकाश के समान अनन्त ज्ञानसम्पन्न; मुझ गौतम को यह अवस्था प्राप्त हो गयी है। तुम भी यदि प्राणपण से प्रयत्न करो, तो उस अवस्था को प्राप्त कर सकते हो।' बुद्ध ने अपनी सब कामनाओं पर विजय पा ली थी, उन्हें स्वर्ग जाने की कोई लालसा न थी और न ऐश्वर्य की ही कोई कामना थी, अपने राज-पाट और सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे, इस राजकुमार ने अपना सिन्धु-सा विशाल हृदय लेकर नर-नारी तथा जीव-जन्तुओं के कल्याण हेतु, आर्यावर्त की वीथी-वीथी में भ्रमण कर भिक्षावृत्ति से जीवन-निर्वाह करते हुए अपने उपदेशों का प्रचार किया।''[७]

आध्यात्मिक जगत में भगवान बुद्ध के इस अभिनव सिद्धान्त ने क्रान्ति ला दी और अल्प समय में ही उनका धर्म ईरान, तुर्की, रूस, पोलैंड, चीन, कोरिया, जापान, एशिया, यूरोप में विस्तृत हो गया और वहाँ अन्धविश्वास, उपरोहित-प्रपंच समाप्त होने लगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द की भगवान बुद्ध के प्रति असीम श्रद्धा थी।

अब हम बुद्ध के बाद युगाचार्य शंकराचार्य जी के प्रति स्वामीजी की दृष्टि क्या थी, उसका अवलोकन करते हैं। यह लोकप्रसिद्ध है कि जब-जब लोकआस्था, विश्वास, धर्म और संस्कृति की हानि होती है, तब कोई-न-कोई युगपुरुष अवतीर्ण होकर उसकी पुनर्स्थापना करते हैं और लोक को नव ज्ञानालोक प्रदान करते हैं। जब विराटहृदय करुणावतार भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित बौद्ध धर्म में कालान्तर में कालप्रभाववश संकीर्णता और विकृतियाँ आ गयीं, तब युगाचार्य शंकराचार्य का प्रादुर्भाव होता है। स्वामी विवेकानन्द उनके सम्बन्ध में अपने मद्रास के व्याख्यान में कहते हैं –''भारत को जीवित रहना था, इसलिये पुन: भगवान का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने घोषणा की थी, 'जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब मैं आता हूँ', वे पुन: आए। इस बार भगवान का दक्षिणी प्रदेश में आविर्भाव हुआ। उस ब्राह्मण युवक का, जिसने सोलह वर्ष की उम्र में ही अपनी सारी ग्रन्थ-रचना समाप्त की, उसी अद्भुत प्रतिभाशाली शंकराचार्य का अभ्युदय हुआ। इस सोलह वर्ष के विलक्षण बालक और उसकी रचनाओं पर आधुनिक सभ्य जगत आश्चर्यचकित हो रहा है। उसने समग्र भारत को उसके प्राचीन विशुद्ध मार्ग पर लाने का संकल्प किया था।''[८]

स्वामीजी श्रीशंकराचार्यजी के अवतारोद्देश्य को बताते हुए कहते हैं – ''तातार, बलूची आदि भयानक जातियों के लोग भारत में आकर बौद्ध बने और हमारे साथ मिल गये। अपने राष्ट्रीय आचारों को भी वे लोग अपने साथ लाये। इस तरह हमारा राष्ट्रीय जीवन अत्यन्त भयानक पाशव आचारों से भर गया। उक्त ब्राह्मण युवक (शंकराचार्य) को बौद्धों से विरासत में यही मिला था।''[९] ऐसी परिस्थिति में शंकराचार्यजी का अवतरण होता है। शंकराचार्यजी ने उपरोक्त कुप्रथाओं, कुसंस्कारों और पाशविक आचारों से मुक्त करने और सनातन धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा करने का प्रण लिया और उसे वे जीवन के अन्त तक करते रहे। कुछ लोगों ने शंकराचार्य को अनुदार कहा, लेकिन स्वामीजी इसके विपरीत कहते हैं – ''मैं नहीं जानता कि लोग शंकराचार्य को अनुदार मत का पोषक क्यों कहते हैं। उनके लिखे ग्रन्थों में ऐसा कुछ भी नहीं मिलता, जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे।''[१०]

श्रीशंकराचार्यजी ने तत्कालीन भारत के चारों दिशाओं में भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म के ध्वजास्वरूप चार धामों की स्थापना की। सनातन धर्म को पुन: प्रतिष्ठित किया और जगत को शाश्वत धर्म से परिचित कराया। उनके जीवन की अनेक घटनाएँ लोगों को सनातन वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धावनत करती हैं। एक ओर शंकराचार्यजी ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की, तो दूसरी ओर विभिन्न देवी-देवताओं के भक्तिमय स्तोत्रों की रचना कर जन-मानस में भक्ति का उद्रेक किया।

इस प्रकार हम स्वामीजी के संक्षिप्त श्रद्धामय उद्‌गारों के द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि युगानुरूप जन-मानस को सत्पथ पर प्रेरित करनेवाले भगवान बुद्ध और भगवान शंकराचार्य के प्रति उनमें आजीवन अपार श्रद्धा थी। मई, २०२१ में उपरोक्त दोनों भगवद्-अवतारों की जयन्ती है। संसार के सभी लोग स्वस्थ, सुखी और आनन्दमय हो, यही इन युगावतारों से प्रार्थना है ! ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य, १/२७, **२.** वही, ५/१५६-१५७, **३.** वही, ७/२११, **४.** वही, ७/२११, **५.** वही, ७/१९८, **६.** वही, ७/२०७, **७.** वही, ७/१९८, **८.** वही, ५/१५८ **९.** वही, ५/१५९, **१०.** वही, ५/१६१.

भक्तियोग

स्वामी विवेकानन्द

(अमेरिका के न्यूयार्क नगर में २० जनवरी, १८९६ को प्रात:काल स्वामीजी ने 'भक्तियोग' विषय पर एक कक्षा ली थी। इसे उनके अंग्रेज शिष्य श्री जे.जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे Complete Works of Swami Vivekananda के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। इसका हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

(गतांक से आगे)

तुम्हें याद होगा कि इस भक्तिमार्ग का पहला पाठ शिष्य के विषय में था। शिष्य कौन है? शिष्य बनने के लिए कौन-कौन से गुण आवश्यक हैं? तुम शास्त्रों में पढ़ते हो, ''जहाँ वक्ता अद्‌भुत हो और श्रोता भी वैसा ही हो। जब आचार्य अद्‌भुत हो और छात्र भी वैसा ही हो। केवल तभी इस आध्यात्मिकता की उपलब्धि हो सकती है।''

आमतौर पर लोग यह आशा करते हैं कि गुरु ही हमारे लिए सबकुछ कर देंगे। अति-अल्प लोग ही समझ सकते हैं कि उनमें शिक्षा पाने की योग्यता नहीं है। शिष्य की पहली आवश्यकता यह है कि उसमें व्याकुलता हो, आध्यात्मिकता के लिए सच्ची स्पृहा हो।

हमें आध्यात्मिकता के अतिरिक्त हर चीज की आवश्यकता है। 'आवश्यकता' का क्या तात्पर्य है? जैसे कि हमें भोजन की आवश्यकता है। विलासिताएँ आवश्यकता नहीं है; परन्तु अनिवार्यताएँ आवश्यकता हैं। संसार के अति-अल्प लोगों के लिए धर्म एक आवश्यकता है; और अधिकांश लोगों के लिए यह एक विलासिता है। जीवन की ऐसी सैकड़ों वस्तुएँ हैं, जिनके बिना वे रह सकते हैं; परन्तु जब वे किसी दुकान पर जाकर कोई नयी तथा कलात्मक वस्तु देखते हैं, तो उसे खरीद लेना चाहते हैं। ९९.९% लोग इसी पद्धति से धर्म को अपनाते हैं। यह उनके जीवन की अनेक विलासितापूर्ण आवश्यकताओं में से एक है। इसमें कोई हानि नहीं। उनकी जो इच्छा हो, सो करें; परन्तु यदि वे सोचते हैं कि वे ईश्वर को बुद्धू बना सकते हैं, तो वे पूर्णत: भ्रमित हैं। उसे बुद्धू नहीं बनाया जा सकता। ये लोग केवल स्वयं को बुद्धू बनाते हैं और क्रमश: पतित होते हुए पशुतुल्य अवस्था में पहुँच जाते हैं। इसलिए जैसे लोग वस्त्र की आवश्यकता का अनुभव करते हैं और कर्म तथा साँस लेने के लिए वायु की आवश्यकता महसूस करते हैं; वैसे ही जो लोग धर्म की आवश्यकता का अनुभव करेंगे, वे लोग आध्यात्मिक हो जाएँगे।

आवश्यकता उसे कहते हैं, जिसके बिना हम रह नहीं सकते; और विलासिता उसे कहते हैं, जो हमारी क्षणिक कामनाओं की पूर्ति के लिए होती है।

शिष्य में जो दूसरा गुण होना चाहिए, वह है पवित्रता; और अगला गुण है अध्यवसाय। उसे कार्य करना होगा – सुनना केवल एक भाग और करना दूसरा भाग।

भक्ति की दूसरी आवश्यकता 'गुरु' है। गुरु को उपयुक्त गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। उस व्याख्यान का मूल भाव यह था कि गुरु में आध्यात्मिकता का बीज विद्यमान होना चाहिए। गुरु केवल वक्ता ही नहीं है, अपितु उस आध्यात्मिक शक्ति का संचार करनेवाला है, जो उसने अपने गुरु से प्राप्त किया है; और जिसे उसके गुरु ने एक अटूट परम्परा के रूप में अपने पूर्ववर्तियों से प्राप्त किया था। उसमें इस आध्यात्मिक शक्ति का संचार करने की क्षमता होनी चाहिए।

जब गुरु और शिष्य दोनों ही सही रूप से तैयार हों, तब भक्तियोग की साधना आरम्भ होती है। भक्तियोग के पहले भाग को प्रारम्भिक साधना कहते हैं, जिसमें तुम प्रतीकों के माध्यम से आगे बढ़ते हो ।

अगला व्याख्यान नाम के विषय में था, (जिसमें बताया गया था) कि कैसे सभी शास्त्रों और सभी धर्मों में नाम की

महिमा बतायी गयी है और कैसे नाम हमारा कल्याण कर सकता है। भक्तियोगी को सर्वदा विश्वास रखना होगा कि नाम ही ईश्वर है और वह ईश्वर से अभिन्न है। नाम और ईश्वर एक है।

इसके बाद बताया गया था कि कैसे भक्तियोगी के लिये विनम्रता तथा श्रद्धा का भाव आवश्यक है। भक्तियोगी स्वयं को मृतक के समान समझे। एक मरा हुआ व्यक्ति कभी अपमान-बोध नहीं करता, कभी प्रतीकार नहीं करता; वह सभी के लिए मर चुका है। भक्तियोगी को सभी साधु-सज्जनों के प्रति सम्मान का भाव रखना चाहिए, क्योंकि प्रभु की महिमा सर्वदा उनकी सन्तानों के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुआ करती है।

अगला पाठ प्रतीकों के विषय में था। उसमें यह बताया गया था कि एकमात्र ईश्वर की पूजा-उपासना को ही भक्ति कहा जा सकता है। अन्य किसी की भी पूजा भक्ति नहीं है, परन्तु हम किसी भी वस्तु की पूजा कर सकते हैं, यदि हम उसे ईश्वर मानें। यदि हम उसे ईश्वर नहीं मानते, तो वह पूजा भक्ति नहीं है। यदि तुम उसे ईश्वर समझो, तब वह ठीक है।

एक योगी एक नदी के तट पर स्थित वन के एक निर्जन स्थान में रहकर ध्यान का अभ्यास किया करते थे। एक गरीब और अज्ञानी चरवाहा भी उसी जंगल में अपनी गायें चराया करता था। वह हर रोज उन योगी को एकान्त में रहते हुए घण्टों ध्यान, तपस्या तथा अध्ययन करते देखा करता। क्रमश: उस चरवाहे के मन में उन योगी के विषय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि वे करते क्या हैं ! उसने योगी के पास जाकर पूछा, ''महाराज, क्या आप मुझे ईश्वर-प्राप्ति का उपाय सिखा सकते हैं?'' वे योगी एक महान व्यक्ति और बड़े विद्वान् थे। उन्होंने उत्तर दिया, ''तू एक साधारण चरवाहा है, तू भला ईश्वर को कैसे समझेगा? रे मूर्ख, तू इन सब बातों में अपना सिर मत खपा और जाकर अपने गायों की देखभाल कर।''

वह बेचारा लौट तो गया, परन्तु न जाने कैसे उसके मन में सच्ची व्याकुलता उत्पन्न हो गयी थी। अत: उससे रहा नहीं गया। वह एक बार फिर योगी के पास आकर बोला, ''महाराज, क्या आप मुझे ईश्वर के बारे में कुछ भी नहीं बता सकते?''

उसे यह कहकर पुन: भगा दिया गया, ''अरे मूर्ख, तू ईश्वर को भला क्या समझेगा? जा, घर लौट जा।'' परन्तु चरवाहे को नींद नहीं आयी; उसकी भूख भी जा चुकी थी। उसे ईश्वर के विषय में कुछ-न-कुछ जानना ही होगा।

इसलिये वह फिर गया और उसकी जिद देखकर योगी ने उससे अपना पिण्ड छुड़ाने के लिये कहा, ''मैं तुम्हें ईश्वर के बारे में बताऊँगा।''

चरवाहे ने पूछा, ''महाराज, ईश्वर किस प्रकार के व्यक्ति हैं? उनका कैसा रूप है? वे दिखने में कैसे हैं?''

योगी ने कहा, ''ईश्वर तुम्हारे झुण्ड के सबसे बड़े साँड़ के जैसे हैं। वही ईश्वर है। ईश्वर ही तुम्हारा बड़ा वाला साँड़ बने हुए हैं।''

चरवाहे को इस पर विश्वास हो गया और वह अपने गायों के पास लौट गया। वह रात-दिन उस साँड़ को ही ईश्वर समझने और उसकी पूजा करने लगा। वह उस साँड़ के लिये सबसे हरी-हरी घास ले आता, उसके पास ही विश्राम करता, उसे प्रकाश दिखाता, उसके पास बैठता और उसके पीछे-पीछे चलता। इसी प्रकार अनेक दिन, महीने तथा कई वर्ष बीत गये। उसका पूरा मन-प्राण उसी (साँड़) में तल्लीन हो गया।

एक दिन उसने मानो साँड़ के मुख से निकलती हुई एक आवाज सुनी। (उसने सोचा,) ''अरे, यह तो बोल रहा है।''

''पुत्र, पुत्र।''

''यह क्या ! साँड़ बोल रहा है ! नहीं, साँड़ बोल नहीं सकता।''

फिर आवाज आयी और इस बार माजरा उसकी समझ में आ गया। आवाज उसके अपने ही हृदय से आ रही थी। उसे पता चला कि ईश्वर उसके भीतर ही हैं। तब आचार्यों के भी परम आचार्य द्वारा कथित यह अद्‌भुत सत्य उसकी समझ में आया, ''मैं सर्वदा ही तुम्हारे साथ हूँ।'' अब उस गरीब चरवाहे को सारा रहस्य समझ में आ चुका था।

इसके बाद वह उन योगी के पास गया। जब वह थोड़ी दूर था, तभी योगी ने उसे देख लिया। वे योगी देश के सबसे विद्वान् व्यक्ति थे और अनेक वर्षों से ध्यान, अध्ययन आदि के माध्यम से तपस्या में लगे थे। इधर यह मूर्ख अज्ञानी चरवाहा पूरी तौर से अशिक्षित था और उसने कभी कोई ग्रन्थ नहीं पढ़ा था। परन्तु जब वह आ रहा था, तो योगी

ने देखा कि उसका पूरा शरीर मानो रूपान्तरित हो चुका है, उसका चेहरा बदल चुका है और ईश्वरीय ज्योति से उसका मुखमण्डल आलोकित हो रहा है।

योगी उठ खड़े हुए और बोले, ''यह सब कैसा परिवर्तन है? यह तुम्हें कैसे मिला?''

''महाराज, आपने ही तो मुझे दिया था।''

''ऐसा कैसे हो सकता है? मैंने तो हँसी में तुमसे वह बात कही थी।''

''परन्तु मैंने तो उसे बड़ी गम्भीरता से लिया। मुझे तो उस साँड़ से ही मेरा चाहा हुआ सब कुछ मिल गया, क्योंकि क्या वह सर्वत्र विद्यमान नहीं है?''

इस प्रकार वह साँड़ एक प्रतीक था। उस व्यक्ति ने उस साँड़ की अपने प्रतीक, अपने ईश्वर के रूप में उपासना की और उसी से उसे सब कुछ प्राप्त हो गया। इसलिये वह प्रबल प्रेम, वह व्याकुलता सब कुछ प्रकट कर देती है। सब कुछ हमारे भीतर ही विद्यमान है और बाह्य जगत् तथा बाह्य रूपों की पूजा उसकी ओर संकेत करते हुए उसे प्रकट कर देती है। जब वे प्रबल हो उठती हैं, तो हमारे भीतर स्थित ईश्वर जाग्रत हो जाता है।

बाह्य गुरु की आवश्यकता प्रेरणामात्र के लिए है। जब बाह्य गुरु में प्रबल विश्वास होता है, तो भीतर विराजमान गुरुओं के गुरु बोलते हैं। उस व्यक्ति के हृदय में चिरन्तन ज्ञान स्वयं बोलता है। तब उसे किन्हीं पुस्तकों, किन्हीं व्यक्तियों या किन्हीं देवदूतों के पास जाने की जरूरत नहीं रहती है; तब उसे उपदेशों के लिए अलौकिक या दैवी शक्तिसम्पन्न लोगों के पीछे नहीं दौड़ना पड़ता। ईश्वर स्वयं ही उसके गुरु बन जाते हैं। उसे जो भी चाहिए वह सब भीतर से ही प्राप्त हो जाता है, तब किसी मन्दिर या चर्च में जाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसका अपना शरीर संसार का महानतम मन्दिर बन जाता है और उसमें सृष्टिकर्ता प्रभु विराजमान रहते हैं। प्रत्येक देश में केवल भक्ति-प्रेम की शक्ति से प्रकट होनेवाले महान सन्तों का जन्म हुआ है, दिव्य जीवन देखने को मिले हैं।

अत: नाम-जप, प्रतीकपूजा, इष्ट तथा निष्ठा आदि भक्ति के ये बाह्य साधन अपने भीतर निहित अनन्त शक्तियों को जगाने हेतु तैयारियाँ मात्र हैं। व्यक्ति जब इन नियमों तथा बन्धनों के ऊपर उठता है, केवल तभी उसमें आध्यात्मिकता आती है। तब सारे नियम टूट जाते हैं। सारे बाह्य रूप लुप्त हो जाते हैं और मन्दिर तथा चर्च ध्वस्त होकर धूल में विलीन हो जाते हैं। एक चर्च के अनुयायी के रूप में जन्म लेना उत्तम है, परन्तु मृत्यु पर्यन्त उसी की सीमा में आबद्ध रहना परम दुर्भाग्यपूर्ण है; एक सम्प्रदाय में जन्म लेना अच्छा है, परन्तु साम्प्रदायिक भावों के साथ उसी में मृत्यु तक बने रहना परम दुर्भाग्यपूर्ण है।

परमात्मा की सन्तान को भला कौन-सा सम्प्रदाय आबद्ध रखने में समर्थ है? कौन से नियम उसे बाँध सकते हैं? वह किन विधि-निषेधों का पालन करेगा? वह भला किस व्यक्ति की पूजा करेगा? वह तो साक्षात् परमात्मा की ही पूजा करता है। परमात्मा स्वयं ही उसे शिक्षा देते हैं। वह तो सभी मन्दिरों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य की अन्तरात्मा में निवास करता है।

अत: पराभक्ति – यह वह लक्ष्य है, जिसकी ओर हम अग्रसर हो रहे हैं और जो कुछ भी हमें उस ओर ले जाता है, वह तैयारी मात्र है। परन्तु यह आवश्यक है। यह अनन्त आत्मा को ग्रन्थों, सम्प्रदायों तथा प्रणालियों के बन्धन से बाहर निकालने में सहायता करता है। अन्तत: वे (ग्रन्थ आदि) मनुष्य की आत्मा को प्रकट करके स्वयं लुप्त हो जाते हैं। ये अनन्त काल से चले आ रहे अन्धविश्वास हैं – मेरे पिता का धर्म, मेरे देश का धर्म या मेरा धर्म या मेरा यह या वह, ये सभी युगों से चले आ रहे अन्धविश्वास मात्र हैं और ये लुप्त हो जाएँगे। जैसे किसी के शरीर में काँटा चुभ जाय, तो वह दूसरा काँटा लेकर (उसकी सहायता से) पहले को बाहर निकालता है और उसके बाद दोनों काँटों को फेंक देता है; इसी प्रकार हमारे भीतर ये अन्धविश्वास भी हैं।

अनेक देशों में, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चों के कोमल मस्तिष्क में भी साम्प्रदायिक भावों के रूप में परम जघन्य तथा आसुरी निरर्थक बातों को भर दिया जाता है। माता-पिता को लगता है कि वे बालक का भला कर रहे हैं, परन्तु वे लोग किसी प्रचलित प्रथा को मानकर वस्तुत: उसका विनाश कर रहे हैं। यह निरी स्वार्थपरता है ! मनुष्य अपने तथा समाज के भय से कौन-सा अनर्थ नहीं करता ! किन्हीं प्रचलित प्रथाओं या अन्धविश्वासों के चलते मनुष्य अपने बच्चों को मार डालता है, माताएँ अपने परिवारों को भूखा रखती हैं और लोग अपने भाइयों से घृणा करते हैं।

हम देखते हैं कि मानवजाति का अधिकांश भाग किसी-न-किसी धर्म सम्प्रदाय के चर्च या मन्दिर के दायरे में जन्म

लेता है और कभी उसके बाहर नहीं निकल पाता। क्यों नहीं? क्या इन अनुष्ठानों ने आध्यात्मिकता के विकास में सहायता की है? यदि इन अनुष्ठानों के द्वारा प्रेम की सर्वोच्च स्थिति में पहुँच जाते हैं, जहाँ बाह्य आचार लुप्त हो जाते हैं और साम्प्रदायिक भाव चले जाते हैं, तो फिर क्यों संसार के अधिकांश लोग सर्वदा किसी-न-किसी बाह्य आचार में आबद्ध रहते हैं? वे सभी नास्तिक हैं, उन्हें कोई धर्म नहीं चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति इस देश में बिना किसी मित्र या पहचान के आ जाता है और मान लो कि उसे अपने देश में अपराधी करार दिया गया हो, तो इस देश में आकर वह जो काम सबसे पहले करेगा, वह है – चर्च से सम्बद्ध हो जाना। उस व्यक्ति को क्या धर्म की प्राप्ति होगी? जो महिलाएँ चर्चों में केवल अपनी पोशाकों का प्रदर्शन करने जाती हैं, क्या तुम सोचते हो कि उन्हें कभी धर्मलाभ होगा? वे लोग इन आचार-अनुष्ठानों से उठ सकेंगे? वे क्रमश: अधोगति को ही प्राप्त होंगी और मृत्यु के बाद पशुओं जैसी अवस्था प्राप्त करेंगी।

जो लोग चर्च में महिलाओं के सुन्दर मुख देखने जाते हैं, क्या तुम्हें लगता है कि उन्हें कभी धर्म की प्राप्ति होगी? चूँकि समाज चाहता है कि लोग किसी खास चर्च या अपने पैतृक चर्च से जुड़ जायँ, अत: वे लोग किसी सामाजिक धर्म से जुड़ गये हैं; तो क्या उन्हें कभी धर्मलाभ होगा? वे कुछ उदार दृष्टिकोणों को समझते हैं, तथापि उन्हें एक विशेष सामाजिक सीमा के भीतर ही रहना होगा और वे चिरकाल तक ऐसा ही करते रहेंगे।

तुम जो चाहते हो, वही पाते हो। परमात्मा सारी इच्छाएँ पूर्ण करते हैं। यदि तुम समाज में एक विशिष्ट स्थान चाहते हो, तो वह तुम्हें मिलेगा। यदि तुम चर्च को चाहते हो, तो तुम परमात्मा को नहीं बल्कि उसी को पाओगे। यदि तुम सारे जीवन इन चर्चों तथा मूर्खतापूर्ण संस्थाओं के बीच निरर्थक दौड़-धूप करते रहना चाहते हो, तो वह सब तुम्हें मिलेगा और जन्म-जन्मान्तर में उन्हीं के भीतर रहना होगा। ''जो लोग भूत-प्रेतों को वश में करना चाहते हैं, वे लोग भूत-प्रेतों के पास जाकर उन्हीं के बीच में रहते हैं; परन्तु जो लोग ईश्वर से प्रेम करते हैं, वे उन्हीं के लोक में जाते हैं।'' अत: केवल वे ही लोग उनके पास आएँगे, जो उनसे प्रेम करते हैं; और जो लोग दूसरों से प्रेम करते हैं, वे लोग उन दूसरों को प्राप्त करेंगे।

मन्दिरों तथा गिरजाघरों में जो कवायद होती है, कुछ खास-खास समय पर घुटने टेकना, फिर खड़े होना और कई तरह के व्यायाम करना, यह सब बकवास है, सब मशीन की तरह होता है, जबकि हमारा मन कुछ और ही सोच रहा होता है, इन सबका सच्चे धर्म से कोई नाता नहीं है। भारत में गुरु नानक नाम के एक बड़े महापुरुष हुए हैं, जिनका जन्म लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हुआ था। आप लोगों में से कुछ ने सिक्खों के विषय में सुन रखा होगा। गुरु नानक सिक्ख धर्म के (संस्थापक तथा) अनुयायी थे।

एक दिन वे मुसलमान लोगों की मस्जिद में गये। जैसे एक ईसाई देश में कोई भी उनके धर्म के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं कर सकता, वैसे ही मुसलमानों के ही देश में उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। ... तो गुरु नानक वहाँ गये और उस विशाल मस्जिद में मुसलमान लोग खड़े होकर प्रार्थना कर रहे थे। ये लोग एक पंक्ति में खड़े हो जाते हैं, फिर झुकते हैं, उसके बाद खड़े हो जाते हैं और इसके साथ ही कुछ शब्दों की आवृत्ति करते हैं। उनमें से एक व्यक्ति इनका नेतृत्व करता है।

गुरु नानक वहाँ गये। जब मुल्ला ने कहा, ''परम दयालु और करुणामय ईश्वर के नाम पर, जो पैगम्बरों के भी पैगम्बर हैं,'' तो गुरु नानक मुस्कुराने लगे। वे बोले, ''इस मिथ्याचारी को देखो।'' मुल्ला चिढ़कर बोले, ''तुम मुस्कुरा क्यों रहे हो?''

''क्योंकि मेरे मित्र, तुम प्रार्थना नहीं कर रहे हो और इसीलिये मैं मुस्कुरा रहा हूँ।''

''मैं प्रार्थना नहीं कर रहा हूँ?''

''बिल्कुल नहीं। तुम्हारे भीतर प्रार्थना का भाव है ही नहीं।''

मुल्ला बहुत नाराज हुए और उन्होंने जाकर काजी की अदालत में शिकायत करते हुए कहा, ''इस अविश्वासी दुष्ट ने हमारे मस्जिद में हमलोगों की प्रार्थना के समय मुस्कुराने का अपराध किया है। इसकी एकमात्र सजा मृत्यु है। इसे मरवा दीजिये।''

गुरु नानक को काजी के सामने पेश किया गया। उन्होंने पूछा कि वे क्यों मुस्कुराये थे।

''क्योंकि यह व्यक्ति प्रार्थना नहीं कर रहा था।''

''तो फिर वह क्या कर रहा था?'' काजी ने पूछा।

''आप उसे मेरे सामने लाइये, तो मैं बता दूँगा कि वह क्या कर रहा था।''

काजी ने मुल्ला को पेश किये जाने का आदेश दिया। उसके आ जाने पर काजी ने कहा, ''मुल्ला आ गये हैं। (अब) बताइये कि उसकी प्रार्थना के समय आप क्यों हँसे थे।''

गुरु नानक बोले, ''मुल्ला के हाथ में (कसम खाने के लिये) कुरान दीजिये। (मस्जिद के भीतर) जब ये 'अल्ला, अल्ला' कह रहे थे, उस समय ये अपने घर में रखे हुए किसी मुर्गे के बारे में सोच रहे थे।''

बेचारे मुल्ला बड़ी उलझन में फँसे। वे दूसरे लोगों की अपेक्षा थोड़े अधिक ईमानदार थे, अत: उन्होंने स्वीकार किया कि वे मुर्गे के बारे में ही सोच रहे थे और सिक्ख गुरु को छोड़ दिया गया। इसके बाद काजी (मुल्ला की ओर मुखातिब होकर) बोले, ''अब दुबारा कभी मस्जिद में मत जाना। वहाँ जाकर अधर्म तथा मिथ्याचार करने से तो यही बेहतर है कि तुम वहाँ जाओ ही मत। जब तुम्हारी प्रार्थना करने की इच्छा न हो, तो वहाँ मत जाओ। एक मिथ्याचारी मत बनो और वहाँ जाकर मुर्गे के बारे में सोचते हुए परम दयालु और करुणामय ईश्वर का नाम मत लो।''

एक मुसलमान एक बगीचे में बैठकर प्रार्थना कर रहा था। वे लोग बड़े नियमित रूप से अपनी प्रार्थनाएँ किया करते हैं। समय हो जाने पर वे चाहे जहाँ भी हों, वहीं पर प्रार्थना प्रारम्भ कर देते हैं। वे धरती पर गिरते हैं, फिर उठते हैं, फिर गिरते हैं, फिर उठते हैं। इसी प्रकार उनकी प्रार्थना चलती रहती है। जब प्रार्थना का समय हुआ, तो उन्हीं में से एक व्यक्ति एक उद्यान में था, अत: वह वहीं धरती पर घुटने टेककर प्रार्थना करने लगा। उसी बगीचे में एक बालिका अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही थी और उसे उद्यान के दूसरी ओर अपने प्रियतम की झलक मिली। उसके पास पहुँचने की जल्दी में उसने उस प्रार्थना करते हुए व्यक्ति को नहीं देखा और उसके ऊपर से होकर चली गयी। वह एक बड़ा ही कट्टर मुसलमान था, ठीक वैसे ही जैसे कि यहाँ (अमेरिका में) प्रेसबिटेरियन लोग हुआ करते हैं। दोनों ही चिर काल के लिये नरक की अग्नि में विश्वास करते हैं। इसलिये जब उसके शरीर के ऊपर से लाँघकर गयी, तो उस मुसलमान के क्रोध का आप अन्दाजा लगा सकते हैं, वह उस लड़की को मार डालना चाहता था। परन्तु वह लड़की बुद्धिमान थी। वह बोली, ''बकवास बन्द करो। तुम मूर्ख और मिथ्याचारी हो।''

''क्या कहा ! मैं मिथ्याचारी हूँ?''

''हाँ, मैं तो अपने जागतिक प्रेमी से मिलने जा रही थी, अत: मैंने तुमको वहाँ नहीं देखा; परन्तु तुम तो अपने स्वर्गिक प्रियतम से मिलने जा रहे हो, इसलिये तुम्हें तो यह पता ही नहीं चलना चाहिये कि कोई लड़की तुम्हारे शरीर को लाँघ कर जा रही है।'' ○○○ **(समाप्त)**

पृष्ठ १९७ का शेष भाग

जगतीमवितुं कलिताकृतयो विचरन्ति महामहसश्छलतः ।
अहिमांशुरिवात्र विभासि गुरो भव शङ्करदेशिक मे शरणम्।।६।।

भावार्थ : इस लोक के रक्षार्थ बड़े-बड़े तेज पुंज लीलापूर्वक विभिन्न आकृतियों (वेशों) में भ्रमण कर रहे हैं, लेकिन हे गुरुवर ! मुझे उन सभी में आप साक्षात् सूर्य सदृश दीखते हैं। अत: हे श्रीशंकराचार्यजी ! आप मेरे शरणस्थल हों।

गुरुपुङ्गव पुङ्गवकेतन ते समतामयतां न हि कोऽपि सुधी:।
शरणागतवत्सल तत्त्वनिधे भव शङ्कर देशिक मे शरणम्।।७।।

भावार्थ : हे गुरुश्रेष्ठ ! हे सर्वोच्च स्थितिवाले ! कोई भी विद्वान आप के समकक्ष नहीं है। अत: हे शरणागत-वत्सल तत्त्वनिधि ! हे श्रीशंकराचार्यजी ! आप मेरे शरणस्थल हों।

विदिता न मया विशदैककला न च किञ्चन काञ्चनमस्ति गुरो।
द्रुतमेव विधेहि कृपां सहजां भव शङ्कर देशिक मे शरणम्।।८।।

भावार्थ : हे गुरुदेव ! न तो मेरे द्वारा कोई एक भी विद्या ठीक-से जानी गई है और न ही मेरे पास कोई धन है। बस ! अब आप ही यथाशीघ्र मुझ पर अपनी सहज कृपा करें। हे श्रीशंकराचार्यजी ! आप मेरे शरणस्थल हों।

हिन्दी अनुवाद : अंकुरनागपाल (दिल्ली)

भजन एवं कविता

श्रीरामकृष्ण-स्तुति

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

रामकृष्ण का नाम भजो मन, करो हृदय से विषयविराग ।
जीवन का सुख नामभजन में, देता यही विमल अनुराग।।
रामकृष्ण-रस पीकर सब जन, सहज करत हैं अवगुण नास।
रामकृष्णरति परम प्राणप्रिय, षट् रिपुओं को देना त्रास।।
मेरे जीवन में भी ठाकुर, करो प्रेम का दिव्य प्रकाश।
रामकृष्ण सुख के सागर में, डूबा रहूँ सदा दिन-रात।।
हे करुणाघन अन्तरवासी, हरो हमारी भवदुखराशि।
दीन दयामय अज अविनाशी, लो प्रणाम तुम घट-घट वासी।।

अपने रंग में रंग दो

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

मेरे जीवन के हर पल को अपने रंग में रंग दो ।
जल के बीच कमल ज्यों रहता ऐसा निर्मल कर दो।।
भव-जल उपर तैर-तैरकर, तुम तक बहता आऊँ,
देखो किसी प्रलोभन में पड़, डूब कहीं न जाऊँ,
जग कोलाहल बीच प्रभु, मुझको प्रिय निर्जन दो ।।
मेरे जीवन के हर पल को ...
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह, आकार मात्र रह जायें,
सोने की तलवार बन वे, हिंसा कर न पायें,
काम क्रोध हँसकर सह जाऊँ, ऐसा जीने का ढंग दो ।।
मेरे जीवन के हल पल को ...
सुबह-शाम उठ तुम्हें पुकारूँ, उठकर ध्यान लगाऊँ,
जो भी तुझको भूल-भुला दे, उसके पास न जाऊँ,
चाह न चिन्ता, साथ न कोई, ऐसा ही सत्संग दो ।।
मेरे जीवन के हर पल को ...

साधो ! पागल हुआ जमाना

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

इस क्षणभंगुर मानव-तन का पलभर नहीं ठिकाना ।
फिर भी भौतिकता के मद में पागल हुआ जमाना ।।
साधो ! पागल हुआ-जमाना।
भागमभाग मची निशिवासर, जन रुकना क्या जाने,
'हम नहीं किसी से कम हैं', तब किसको हम मानें,
फिक्र पड़ी है अपनी-अपनी, तब किसको पहचानें
बने स्वयंभू महामहिम जो, वे किसको सम्मानें,
बिखर रहा है मानवता का सारा ताना-बाना ।
साधो ! पागल हुआ-जमाना।
आपाधापी, छीना-झपटी आज मची है भारी,
'हम सबके ऊपर हो जायें', बस इतनी तैयारी,
लोभ-लता आकाश छू रही, खिली काम-फुलवारी
सत्य-सरलता पीछे छूटे, आगे छल-मक्कारी
भाई ही भाई पर साधे दोनों हाथ निशाना ।
साधो ! पागल हुआ-जमाना।
धन के पीछे भाग रहे सब, निशिदिन बिना बिचारे,
धन के नाते रिश्ते-नाते, हुए जा रहे खारे,
कितना भी धन मिले, किन्तु जन रहते हाथ पसारे,
मारे-मारे लोग फिर रहे धन-पिशाच के मारे,
प्रीति-रीति की कौन कहे ! सब काम हुआ मनमाना।
साधो ! पागल हुआ-जमाना।
सब हैं समझदार अपने में, कौन किसे समझाये,
माया-ठगिनी मोह-जाल में सबकी मति भरमाये,
सच्ची-सीधी बात किसी को नहीं समझ में आये,
जैसे ज्वर के प्रबल वेग में भूख विदा हो जाये,
अब तो ऐसा लगता - मानो, जग है पागलखाना
साधो ! पागल हुआ-जमाना।

देहं नाहं कोऽहं सोऽहं

श्रीधर कृष्ण, ईआरपी कंसल्टेंट, चेन्नई, तमिलनाडु

जी.वी. सुब्रमैया की दो पुत्री थीं। एक का नाम ललिता और दूसरी का नाम इन्दिरा था। सुब्रमैया सपरिवार भगवान श्रीरमण महर्षि का दर्शन करने नियमित आया करते थे। रमण महर्षि का दर्शन करने आने में उन्हें यातायात की बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। वे एक बार महर्षि का दर्शन करने आये। उस समय की यह घटना है। उनकी छोटी पुत्री इन्दिरा पाँच वर्ष की थी। वह बहुत ही चंचल, नटखट और शरारती थी।

सभाभवन में बहुत से भक्त महर्षि का सत्संग कर रहे थे। एक भक्त ने महर्षि से पूछा – ''भगवान ! हम संसार में हैं और संसार के कर्मों में व्यस्त रहते हैं। सांसारिक कर्मों को करते हुए भी हम अपने मन को किस प्रकार शान्त रख सकते हैं?''

महर्षि ने उत्तर दिया – ''यदि हमारे भीतर कर्तापन नहीं होगा, तो हम संसार के सभी कर्म करते हुए भी शान्त रह सकते हैं।''

जहाँ सत्संग चल रहा था, उसी सभा-भवन में इन्दिरा खेल रही थी तथा शोरगुल करते हुए इधर-उधर घूम रही थी। वहाँ के वस्तुओं – कभी पुस्तक को लेकर, तो कभी महर्षि के डण्डा, भिक्षापात्र, तो कभी सोफा के पास रखी घड़ी को लेकर खेल रही थी।

रमण महर्षि ने इन्दिरा से पूछा – माँ तुम क्या कर रही हो?

इन्दिरा ने उत्तर दिया – मैं कुछ भी नहीं कर रही हूँ। मैं शान्त और स्थिर हूँ।

इसे सुनकर सभी लोग हँसने लगे क्योंकि इन्दिरा बहुत शरारत कर रही थी और बता रही है कि मैं कुछ नहीं कर रही हूँ, मैं शान्त और स्थिर हूँ।

महर्षि ने हँसते हुए उपस्थित भक्तों की ओर देखते हुए कहा – देखो, ठीक इसी प्रकार संसार के कर्म करना चाहिए। वह कार्य कर रही है, लेकिन वह बता रही है कि मैं शान्त और स्थिर हूँ। यह आत्मज्ञान का सार है। एक व्यक्ति कोई भी कार्य कर सकता है फिर भी वह शान्त और स्थिर रह सकता है।

इसी यात्रा के समय एक दिन इन्दिरा ने महर्षि के तेलगू भाषा के 'उपदेशसारम्' के पृष्ठ को पलटते हुए पढ़ना आरम्भ किया। उसमें चार पंक्तियाँ संस्कृत में – **देहं नाहं कोऽहं सोऽहं** – (अर्थात् मैं शरीर नहीं हूँ। तुम कौन हो? मैं ब्रह्म हूँ) लिखा हुआ था। उसने इसको पढ़ा। इन्दिरा ने जब इसे पढ़ा, तो महर्षि ने कहा कि यह पर्याप्त है, तुमको और आगे पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। तुमने जो पढ़ा वह सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। तुम इसे अपना मन्त्र बना लो।

विश्वनाथ स्वामी नामक एक भक्त रमण महर्षि और इन्दिरा के बीच इस विलक्षण वार्तालाप को सुन रहे थे।

विश्वनाथ ने महर्षि से कहा – यह छोटी बच्ची इस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को समझेगी क्या?

महर्षि ने विश्वनाथ को उत्तर देते हुए कहा – ओह ! समझने से ही क्या जानना हो जाता है ! तुम सब जानते हो, तो क्या तुम सब समझ गये हो?

विश्वनाथ यह सुनकर चुप रह गये।

रमण महर्षि जब भी इन्दिरा को देखते, तो उसको इस मन्त्र को दोहराने के लिए कहते। बहुत जल्द ही उसने इसे कण्ठस्थ कर लिया।

महर्षि प्रतिदिन की तरह अरुणाचल पहाड़ी पर घूमने के लिए जा रहे थे। उसी समय दोनों लड़की ललिता और इन्दिरा रमण महर्षि से विदाई लेने के लिए आयीं। दोनों ने महर्षि से कहा कि हमें घर जाना होगा। यह कहते हुए इन्दिरा रोने लगी। इन्दिरा की पीठ को प्यार से थपथपाते

शेष भाग पृष्ठ २१० पर

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६५)

स्वामी भूतेशानन्द

(४१)

प्रश्न – क्या आत्मविश्वास को आदर्श कहा जा सकता है? कहा गया कि इसी उपाय से मोक्ष हो सकता है?

महाराज – इसका अर्थ है कि मोक्ष ही तुमलोगों का काम्य हुआ?

– महाराज, यह तो उपाय है, इसको कैसे काम्य मानेंगे?

महाराज – इसमें जगत-हित नहीं है। किन्तु उसको साथ-साथ रखना होगा। जो लोग केवल मोक्षकामी हैं, वे यह नहीं जानते कि सभी पथ एक ही लक्ष्य को ले जाते हैं।

– तब तो एक साथ दोनों पर जोर दिया गया है।

महाराज – दो पर या एक पर, वह बात नहीं है। क्योंकि स्वामीजी कह रहे हैं – "Each soul is potentialy divine." – प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है।

– रामकृष्ण संघ के प्रतीक चिह्न में चार योग दिखाया गया है। उसमें नीचे लिखा हुआ है – '**तन्नो हंसः प्रचोदयात्**'।

महाराज – यह प्रार्थना है।

– यह हमलोगों का प्रतीक चिह्न है। '**आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च**', इसे हमलोगों का आदर्श कहा जाता है।

महाराज – हाँ, आदर्श है। किन्तु प्रतीक चिह्न तो आदर्श नहीं है। चारों योगों के समन्वय से कैसे आदर्श की प्राप्ति होगी, उसका संकेत यहाँ किया गया है।

प्रश्न – ठाकुर ने कहा है – सदा-सर्वदा उनका (भगवान का) नाम करना चाहिए। पुनः एक स्थान पर कह रहे हैं – मृत्यु को सदा याद रखना चाहिए, ये दोनों एक साथ कैसे होगा, महाराज?

महाराज – "**गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।**" अर्थात् जैसे यम केश को मुट्ठी में पकड़ लिया हो, ऐसा समझकर धर्म का आचरण करोगे। अब समय नहीं है, अभी आरम्भ करो। यही बात कही गयी है।

– किन्तु मृत्यु को सर्वदा कैसे याद रखेंगे?

महाराज – हमलोग मृत्यु की पूजा करते हैं क्या? भगवान की पूजा करते हैं, मृत्यु की पूजा नहीं करते।

– नहीं, आप मृत्यु को स्मरण रखने को कह रहे हैं।

महाराज – स्मरण रखना होगा, क्योंकि अभी जो कहा – "**गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।**" मृत्यु को स्मरण करने से मृत्यु के हाथ से बचने का जो मार्ग है, वह याद आयेगा। यही हुआ भगवत्स्मरण।

प्रश्न – महाराज, स्वामीजी ठाकुर के आरती-स्तव में कह रहे हैं – 'सम्पद तव श्रीपद भव गोष्पद वारि यथाय।' क्या इसका अर्थ है कि ठाकुर को आश्रय लेने पर अधिक कुछ नहीं करना होगा?

महाराज – यह तो नहीं कहा जा रहा है। कहा जा रहा है, उनके श्रीचरण रूपी सम्पत्ति को धारण करने पर भव-समुद्र गोष्पद – गाय के खुर के समान हो जाता है।

– अर्थात् कम हो जाता है क्या?

महाराज – कम हो जाता है क्या? गोष्पद अर्थात् गाय के खुर में जितना गड्ढा होता है, उसे जैसे अनायास ही पार हो जाया जाता है, वैसे ही भव-समुद्र के पार हो जाते हैं।

– तब क्या हमलोग अनायास ही उस गोष्पद को पार हो जायेंगे, यदि ठाकुर को ग्रहण करें तो? अर्थात् कुछ साधना नहीं करनी पड़ेगी?

महाराज – 'तव श्रीपद सम्पद' इसे करना होगा, तभी तो भवगोष्पद होगा।

प्रश्न – महाराज ! ठाकुर एक स्थान पर कह रहे हैं – 'ईश्वर साकार-निराकार और कितना कुछ हो सकते हैं।' महाराज, 'और कितना कुछ' से क्या समझाया जा रहा है?

महाराज – अर्थात् वे मन और वाक्य के अगोचर हैं। जो मन और वाक्य के अगोचर हैं, उनको कैसे समझोगे? साकार का एक विशेषण दिया गया। निराकार का भी एक विशेषण दिया गया। 'और कितना कुछ' अर्थात् इसके अतिरिक्त और

कितना है, जिसकी धारणा हमलोग नहीं कर सकते।

– महाराज ! ईश्वर तो वाक्य-मन के अतीत हैं?

महाराज – ईश्वर कह रहे हो, फिर कहते हो कि वाक्य-मन के अतीत हैं ! ईश्वर का क्या अर्थ है? ईश्वर अर्थात् सर्वनियन्ता। वह तो कहा ही गया। तब वाक्य मन के अतीत कैसे हुआ?

– किन्तु स्वामीजी कह रहे हैं – 'मनोवचनैकाधार' !

महाराज – इसका अर्थ है – वे मन-वाक्य के एकमात्र आश्रय, आधार हैं। उनका मनन करना होगा। उनकी वाणी का चिन्तन करना होगा। यही तो, एक मात्र आश्रय है, एक मात्र आधार है।

– 'मनोवचनैकाधार' अर्थात् एकमात्र आधार होता है क्या?

महाराज – हाँ। वे एकमात्र आधार हैं, इसे याद रखना होगा। श्रुति में है – **''तमेवैकं जानथ आत्मानं अन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः।''** (मुण्डकोपनिषद् - २/२/५) – उसी एक आत्मा को जानो। अन्य सभी बातों, चिन्तनों को छोड़ दो। यही हुआ 'मनोवचनैकाधार'। बल्कि जहाँ-जहाँ विभूति का ऐश्वर्य है, जहाँ-जहाँ सौन्दर्य है, जहाँ प्रबल उत्कर्ष है, वहाँ-वहाँ भगवान का अंश है। परशुराम में भी वही विभूति है, तभी उन्हें ईश्वर का अवतार कहा जाता है। पुराणों के मतानुसार ये लोग अंशावतार हैं।

– क्या श्रीराम पूर्ण अवतार हैं?

महाराज – नहीं। श्रीराम अंशावतार हैं। उनका जन्म चार भाग में हुआ है – राम, लक्ष्मण, भरत, शुत्रघ्न। इसलिए पूर्ण कैसे होंगे? एकमात्र श्रीकृष्ण को ही भागवत में पूर्ण अवतार कहा गया है। ''**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान स्वयं।**'' अर्थात् ये सब पुरुष के अंश, कला हैं। श्रीकृष्ण स्वयं अवतार, स्वयं भगवान हैं। यह भागवत की बात है। हमलोग कहते हैं, जिसके जो इष्ट हैं, वही उसके लिये पूर्ण हैं।

प्रश्न – महाराज ! जगत-कारण किसे कहते हैं?

महाराज – जहाँ से जगत की सृष्टि होती है।

– उसे क्या प्रकृति कहेंगे, महाराज !

महाराज – प्रकृति तो सांख्य योग की है।

– ईश्वर कह सकते हैं क्या?

महाराज – वैसे कह सकते हो। शब्दों का विश्लेषण करने पर ऐसा होगा, ईश्वर जब सृष्टि-उन्मुख होते हैं, तभी की बात है।

प्रश्न – महाराज ! कारण शरीर में आनन्द का अनुभव होता है?

महाराज – कारण में लय होता है, कह सकते हो।

– तब आनन्द?

महाराज – हाँ, आनन्द।

– ठाकुर एक दिन कह रहे हैं – महाकारण तुरीय, उसे मुख से नहीं कहा जा सकता।

महाराज – तुरीय कहने का अर्थ कारणातीत है। ईश्वर क्यों कारणातीत नहीं हैं? क्योंकि उनसे जगत् की उत्पत्ति हो रही है।

– महाराज ! मन जितना ही शुद्ध होता है, उतना ही समाधि की ओर अग्रसर होता है, उतना ही आनन्द बढ़ता है। क्या आनन्द का अनुभव हमारे मन के शुद्ध होने से होता है?

महाराज – जब मन लय होता है, तब उसकी एक वृत्ति होती है। उसको ही हमलोग कहते हैं – आनन्दकारावृत्ति। वही वृत्ति जहाँ लय होती है, वहाँ तुरीय होता है।

प्रश्न – बेलूड़ मठ में स्वामीजी के मन्दिर के उत्तर की ओर एक वृक्ष है, शायद वह बहुत पुराना है। जब जमीन खरीदी गयी थी, तब का है। वह अशोक का वृक्ष है। इसके अतिरिक्त - पूर्णा, चन्दन, ठोठा वट और नागलिंगम्, इन चार वृक्षों का वर्णन स्वामी दिव्यात्मानन्द की पुस्तक 'दिव्य प्रसंग' में है। अच्छा महाराज ! ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के किन पाँच वृक्षों को लेकर पंचवटी बनाया गया है? दक्षिणेश्वर में जो पंचवटी है, जिसके नीचे ठाकुर ने तपस्या की है, शायद उसी वृक्ष की डाली से इसका निर्माण हुआ है।

महाराज – हाँ, वह स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज के समय हुआ था।

– कल सबेरे दक्षिणेश्वर जा रहे हैं।

महाराज – जब जाओगे, तब मास्टर महाशय ने दक्षिणेश्वर का जो वर्णन किया है, उसे साथ में लेते जाना।

– श्रीरामकृष्ण-वचनामृत लिया हूँ।

महाराज – नहीं, प्रथम भाग में दक्षिणेश्वर का वर्णन

जहाँ है, उसे साथ में ले जाओ और उससे मिलाकर देखो।

प्रश्न – महाराज ! आप बीच-बीच में इतना श्लोक बोलते हैं, इसे याद कैसे रखे हैं?

महाराज – जब जो श्लोक याद आता है, उसे बोलता हूँ। कितने श्लोक मन में गुँथे हुए हैं, इसलिए बीच-बीच में बोलता हूँ। भागवत पढ़ा हूँ, चर्चा भी किया हूँ। भागवत में एकादश अध्याय नवनीत है।

प्रश्न – महाराज ! आपलोगों के समय मठ में एक पण्डित थे, वे कौन थे?

महाराज – तारासार पण्डितजी – तारासार भट्टाचार्य। हमलोग उनसे पढ़े हैं।

प्रश्न – स्वामीजी ने एक स्थान पर कहा है – ''हमारी अपनी मातृभूमि हेतु हिन्दू और इस्लाम धर्म, इन दोनों महान सम्प्रदायों का समन्वय, वेदान्तिक मस्तिष्क और इस्लामी शरीर, यही एकमात्र आशा है।'' इसे थोड़ा समझायेंगे क्या?

महाराज – यह तो समझ सकते हो कि शरीर ठीक रहने से परिश्रम कर सकते हो। मस्तिष्क अपनी बुद्धि का प्रयोग कर सकता है, लेकिन उसमें कार्य करने की शक्ति नहीं है। जैसा विभेद हिन्दुओं में है, वैसा मुसलमानों में नहीं है। इस्लाम में समाज-शरीर साम्यता की ओर इंगित है। हिन्दुओं का मस्तिष्क अर्थात् उच्च चिन्तन करने की क्षमता है। उसे ही स्वामीजी ने वेदान्ती मस्तिष्क कहा है। हमलोगों का चिन्तन उच्च है, किन्तु वास्तविक रूप से हमारे समाज में बड़ा भेद है। स्वामीजी दोनों भावों के समन्वय से निर्मित समाज चाहते थे। तत्त्व-धारण करने की क्षमता और तत्त्व को यथार्थ में व्यवहृत कर समाज-शरीर को शक्तिशाली करना, यही स्वामीजी की आकांक्षा थी।

प्रश्न – महाराज ! तत्त्व-चिन्तन क्या है?

महाराज – तत्त्व-चिन्तन का अर्थ है, जिनका नाम-जप कर रहे हो, उनके स्वरूप का चिन्तन करना।

– स्वरूप के विषय में थोड़ा बोलिये महाराज !

महाराज – स्वरूप अर्थात् श्रीरामकृष्ण का स्वरूप। 'जो राम, जो कृष्ण, अभी वही श्रीरामकृष्ण हैं' इस बात को ठाकुर ने स्वयं कहा है। उन्होंने और भी कहा है – ''इसके भीतर माँ को छोड़कर दूसरा कुछ नहीं है।'' अखण्ड धाम से स्वामीजी को जिस देव-शिशु ने लाया था, उससे भी उन्होंने अपनी ही बात कही है। अन्य स्थान पर उन्होंने कहा है – ''इसके भीतर दो हैं – एक भक्त और दूसरा भगवान। इसके भीतर से सच्चिदानन्द बाहर चला आया। मैंने सत्त्वगुण का प्रकाश देखा।'' इत्यादि का चिन्तन करने को तत्त्व-चिन्तन कहते हैं। **(क्रमशः)**

पृष्ठ २०७ का शेष भाग

हुए महर्षि ने कहा – तुम अपनी जगह जाओ (इन्दिरा की यह अन्तिम यात्रा सिद्ध हुई) और मैं अपनी जगह जाता हूँ (पहाड़ी की ओर संकेत करते हुए)।

घर वापस आने के बाद दोनों बच्चियों ने अपने पिताजी सुब्रमैया को पत्र लिखा। उस समय वह आश्रम में ही थे। ललिता ने अपने पिताजी को लिखा कि महर्षि को बता दीजिए कि मैं अगली कक्षा में चली गयी हूँ।

जबकि इन्दिरा ने लिखा कि वह अविरल मन्त्र का जप कर रही है और आपका (रमण महर्षि) ध्यान कर रही है। इस पत्र को पढ़कर महर्षि बहुत आनन्दित हुए। इसके कुछ दिनों के बाद ही इन्दिरा ने इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। अपने अन्तिम साँसों तक वह 'देहं नाहं कोऽहं सोऽहं', 'देहं नाहं कोऽहं सोऽहं' का जप कर रही थी ।

इन्दिरा के अन्तिम संस्कार के स्थान पर उसके पिता सुब्रमैया ने एक समाधि का निर्माण किया, जिस पर लिखा हुआ था – 'देहं नाहं कोऽहं सोऽहं'। ○○○

मैं तुम्हें सच बताता हूँ। तुम संसार में रहते हो इसमें कोई हानि नहीं है। किन्तु तुम्हें अपने मन को भगवान की ओर लगाये रखना चाहिए, अन्यथा तुम सफल नहीं होगे। एक हाथ से संसार के काम करो और दूसरे से भगवान के चरणों को पकड़े रहो। जब संसार के कामों का अन्त हो जायगा तो दोनों हाथों से भगवान के चरणों को पकड़ना। – श्रीरामकृष्ण देव

स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन में आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना

डॉ. सूरजभानसिंह चारण

अध्यक्ष, स्वामी विवेकानन्द विचार प्रचार सेवा समिति, जयपुर

प्राचीन भारत सम्पूर्ण विश्व में जगद्गुरु के रूप में प्रख्यात था। इसके साथ ही भारत अपनी आर्थिक सम्पन्नता के लिए भी विशिष्ट पहचान रखता था। ब्रिटिश काल में भारत की अर्थव्यवस्था के शोषण से स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था अपने सुनहरे इतिहास का खण्डहर मात्र रह गई थी। इस प्रकार आत्मनिर्भर भारत आयात-निर्भर भारत बनकर रह गया था। स्वामी विवेकानन्द भारत के सबसे प्रतिष्ठित आध्यात्मिक नेताओं में से एक थे। वे एक भिक्षु होने के साथ महान समाज सुधारक और प्रेरक व्यक्तित्व के धनी भी थे। उन्होंने अन्धविश्वास का मुकाबला करने के लिए सघन प्रयास किए। उनके लिए अधम, गरीब, दीन-दुखी, बीमार और शोषित की सेवा करने से बड़ा कोई धर्म नहीं था। निस्संदेह वे भारत के पहले और सबसे सफल ब्रांड एबेंसडर थे, जिन्होंने एकता और समानता के विचार को दूर-दूर तक फैलाया। इस प्रकार स्वामीजी एक दार्शनिक, विचारक, समाज सुधारक होने के साथ-साथ आध्यात्मिकता की उच्च परम्परा के वाहक थे। उन्होंने अपने चिन्तन में प्राचीन एवं नवीन आध्यात्मिक सिद्धान्तों का समन्वय करते हुए अपने विचारों को शिक्षा के माध्यम से संसार के सम्मुख रखा। उन्होंने १९वीं शताब्दी में उन मुद्दों और विषयों के बारे में बात की, जो आज के समय में पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हैं। उनका जीवन भले ही समाज सुधारक, उपदेशक, दार्शनिक का रहा हो, लेकिन वे एक सच्चे संन्यासी थे। अत: उन्होंने आत्मसम्मान और आत्मगौरव को महत्ता प्रदान करते हुए आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना प्रस्तुत कर दी थी। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि स्वामीजी ने आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना में आध्यात्मिक उन्नयन एवं लोक-कल्याण को आधार बनाया था। इस प्रस्तुत लेख में स्वामी विवेकानन्द के इन्हीं बिन्दुओं पर आधारित विचारधारा को वर्तमान परिदृश्य में स्थापित करते हुए आर्थिक समृद्धि, विकास और समावेशी विकास से सम्बद्ध कर आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना में उनके चिन्तन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

भारत अपनी विशाल भूमि, अपार जनसंख्या, विविधताओं एवं अतीत की विरासत के कारण जगत के लिए सदैव एक रहस्य रहा है। ऐतिहासिक साक्ष्य पुष्ट करते हैं कि भारत किसी समय आर्थिक रूप से काफी सम्पन्न था। जब अंग्रेज आए, उस समय विश्व की अर्थव्यवस्था में भारत का हिस्सा २३ प्रतिशत था और वे गए तब यह घटकर मात्र ४ प्रतिशत रह गया। एक समय विश्व के बड़े हिस्से से भारत का व्यापार चलता था। आज चीन जिस शिल्क रूट पर पुन: काम कर अपना आर्थिक आधार और मजबूत करना चाह रहा है, उस रेशम मार्ग पर किसी समय भारत के व्यापारी व्यापार करते थे। भारत की सम्पन्नता का वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी अपने यात्रा-वृतान्त में किया है। चाणक्य का ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' आज भी सुप्रसिद्ध ग्रंथ माना जाता है। इस प्रकार हम कभी अर्थ-चिंतन में श्रेष्ठ और अर्थव्यवहार में कुशल थे। यही कारण था कि भारत को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। आज जब अर्थ-चिंतन के अर्थ-सिद्धान्त की पूँजीवादी और मार्क्सवादी विचारधाराएँ असफल साबित हो रही हैं, तो फिर से एक बार जगत की दृष्टि भारत पर है।

आज अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से विश्वभर में अनेक मॉडल प्रचलित हैं। लेकिन ये सभी माडल असफल ही सिद्ध हुए हैं। इन मॉडलों को अपनाने से अमीर और गरीब के बीच की खाई और बढ़ी है। ये सभी मॉडल विश्व के सम्पन्न एवं विकसित देशों को भी आर्थिक मंदी से बचा नहीं पाए। प्राचीन समय में भारत की सम्पन्नता का कारण उसकी उचित अर्थनीति थी, जो भारतीय दर्शन का हिस्सा है। भारत ने अर्थ को महत्त्वपूर्ण मानते हुए उसे साधन माना, साध्य नहीं। हमारे यहाँ अध्ययन एवं चिन्तन में अर्थशास्त्र के साथ ही नीतिशास्त्र पर भी बल दिया गया। भारतीय दृष्टि में उपभोग को नकारा नहीं, बल्कि इसके सीमित, संयमित और सदाचारी उपभोग पर जोर दिया गया। न्यायपूर्ण वितरण के साथ ही 'ट्रस्टीशिप' जैसा सिद्धान्त भी भारतीय अर्थ-चिन्तन की ही देन है। भारत के आर्थिक चिन्तन में हर समस्या का समाधान मिलता है। इनको यदि सही ढंग से लागू किया जाए, तो निश्चित ही अर्थव्यवस्था का एक भिन्न स्वरूप देखने को मिलेगा। आज वर्तमान अर्थव्यवस्थाएँ संसार की समस्याओं का समाधान नहीं दे पा रहीं हैं। इन्होंने समस्याओं को और बढ़ा दिया है। वर्तमान परिदृश्य में आवश्यकता एक ऐसे मॉडल की है, जो न केवल इसका समाधान दे, बल्कि विकास को टिकाऊ भी बनाये रखे। अर्थ चिन्तन न केवल भारत अपितु विश्व की हर सामाजिक व्यवस्था के केन्द्र में रहा है। अर्थ-चिन्तन को केन्द्र में रख कर देशहित में विचार करना ही चाहिए। भारत के संदर्भ में यह भी सही है कि हमने अर्थ को ही सब कुछ नहीं माना। अर्थ को महत्त्वपूर्ण माना। जिस अर्थशास्त्र का अध्ययन, अध्यापन व अनुसंधान आजकल हम अकादमिक स्तर पर करते हैं, दुर्भाग्य से उस अर्थशास्त्र ने स्वयं को नीतिशास्त्र से पृथक् कर लिया है। अत: जिस अर्थ-चिन्तन या अर्थव्यवहार में आर्थिक सिद्धान्त, नीतिशास्त्र से स्वयं को अलग कर लेता है, उसका परिणाम पतनोन्मुख ही होगा। भारतीय चिन्तन से यह स्पष्ट हुआ कि अर्थव्यवहार करते समय नैतिकता को नहीं छोड़ना चाहिए। यही कारण है कि भारत में अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र यानी नीतिशास्त्र दोनों को साथ लेकर ही अर्थ-चिन्तन किया गया। इसीलिए भारतीय परम्परा में पुरुषार्थचतुष्टय अर्थात् चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। इतना ही नहीं पुरुषार्थचतुष्टय के क्रम-निर्धारण में भी अर्थ और काम को धर्म और मोक्ष के मध्य में रखा गया है अर्थात् धर्म का स्थान पहले और फिर अर्थ को स्थान दिया गया है।

भारत की इसी उदात्त संकल्पना एवं वर्तमान परिदृश्य को केन्द्र में रखते हुए आत्मनिर्भर भारत पर स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन पर विचार किया जाना समीचीन है। स्वामीजी के आर्थिक चिन्तन का केन्द्र भारत की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संकल्पना पर आधारित था। यही कारण था कि उनकी दृष्टि में किसी भी राष्ट्र के लिए आत्मनिर्भर होने के लिए अन्य राष्ट्रों से मित्रवत् सम्बन्ध होने चाहिए। इस प्रकार वे आत्मनिर्भरता के लिए मुक्त अर्थव्यवस्था या वैश्वीकरण की संकल्पना के विरोधी नहीं थे। वे स्वदेशी उद्योगों के अवश्य ही पक्षधर थे, लेकिन उन्हें उन्नत तकनीक और उसे विदेशों से प्राप्त करने में संकोच नहीं था। इस मत के अतिरिक्त उनकी प्राथमिकता यह थी कि औद्योगीकरण, उत्पादन, क्रय-विक्रय, वितरण इत्यादि सब स्वदेशी व भारतीय परिधि के भीतर रहते हुए होना चाहिए। स्वामीजी की इस भावना को उनके शिक्षा के सम्बन्ध में व्यक्त किए गए विचारों को उनकी आत्मनिर्भरता की संकल्पना से सम्बद्ध करते हुए हमें समझना चाहिए। उन्होंने कहा था – ''औरों से उत्तम बातें सीखकर उन्नत बनो। जो सीखना नहीं चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है।'' उन्होंने कोलकाता में दिए अपने एक भाषण में कहा था, ''आपके पास एक सुई बनाने की क्षमता भी नहीं है और आप ब्रिटिशों की आलोचना करने का दुस्साहस करते हैं। मूर्खों ! उनके पैरों के पास बैठो और उनसे कला और उद्योग सीखो। निश्चित रूप से वे व्यावहारिक विज्ञान और भौतिक स्थिति में सुधार लाने में सहायक होंगे।'' इस प्रकार कला, कौशल एवं ज्ञान को पारस्परिक आदान-प्रदान से सीखने व अर्जित करने के स्वामीजी पक्षधर थे। वे चाहते थे, हमें राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ पारस्परिक लेन-देन को जारी रखना चाहिए। इस सन्दर्भ में स्वामीजी जापान का उदाहरण देते हुए कहते थे, 'जापानियों ने यूरोपियों से सब कुछ लिया, लेकिन वे जापानी बने रहे। इसी प्रकार तुम्हें भी यूरोप से लेना है, लेकिन यूरोपीय नहीं बनना है।'

गरीबी दूर करने, कृषि एवं औद्योगिक विकास और श्रमिकों की स्थिति पर स्वामीजी ने काफी बल दिया था। औद्योगिक विकास के लिए श्रमिकों की महत्ता को उन्होंने स्वीकार किया था। उनका कहना था - 'उद्योगपतियों और श्रमिकों के मध्य मधुर सम्बन्ध रहने चाहिए। पूँजीपतियों और श्रमिकों के बीच संघर्ष से अन्ततोगत्वा राष्ट्र की ही क्षति होती है।'

स्वामीजी जानते थे कि धर्म और ज्ञान में हमारा देश विश्वगुरु रहा है, किन्तु अन्न नहीं है, लोग भूख से मर रहे हैं, उद्योग नहीं हैं, कृषि में उन्नत तकनीक हमारे पास नहीं है। इसीलिए उन्होंने कहा कृषि-उपज बढ़ाओ, नए उद्योग लगाओ और उत्पादन बढ़ाओ। इसी संदर्भ में उन्होंने अमेरिका-प्रवास के दौरान कहा कि 'आप भारत में धर्म प्रचार के लिए मिशनरी भेजते हैं। धर्म तो वहाँ पहले से ही बहुत है। भारत की आवश्यकता धर्म नहीं भौतिक है, उसमें सहायता क्यों नहीं करते।'

स्वामी विवेकानन्द का एक बड़ा ही मार्मिक उद्धरण है, जिसे सम्प्रति 'विवेक ज्योति' के सम्पादक स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने शुकताल में स्वामी कल्याणदेव के शिष्य ब्रह्मचारी ओमानन्द जी महाराज के साथ हुए साक्षात्कार में उद्धृत किया है। स्वामी विवेकानन्द ने स्वामी कल्याणदेव को कहा था, 'भगवान के दर्शन गरीब की झोपड़ी में होंगे। भगवान के दो बेटे हैं – किसान और मजदूर। जब तुम प्रात: उठकर घर से निकलोगे, तो तुम्हारे कान में आवाजें आएँगीं, एक मन्दिर के घण्टे की दूसरी तड़पते कराहते हुए दुखियों की।''

इस प्रकार स्वामीजी के सामाजिक, आर्थिक व औद्योगिक चिन्तन का यही सारांश है। वर्तमान परिदृश्य में भारत की आर्थिक संकल्पना में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए इन्हीं बिन्दुओं को आधार बनाया जाना उचित है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता का यह मार्ग हमारी समावेशी विकास एवं सतत विकास की संकल्पना के भी आधार-स्तम्भ बन सकते हैं। अब हमारी आर्थिक और राष्ट्रीय नीतियाँ बने और उनका सफल क्रियान्वयन हो। गरीबी दूर करने एवं श्रमिकों की स्थिति सुधारने के लिए स्वामीजी के अनुसार हमें कृषि एवं औद्योगिक विकास पर अधिक बल देना चाहिए। यदि हम अपने वर्तमान आर्थिक परिदृश्य को देखें, तो हमारे सकल घरेलू उत्पाद में कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र का अनुपात बहुत कम हो गया है। कृषि क्षेत्र में सुधार के लिए हमें उचित प्रयास करने होंगे। वर्तमान में कृषि क्षेत्र में गिरावट का मुख्य कारण यह है कि हमारे कृषकों की समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। यही कारण है कि आज भारतीय किसान मजदूर बनने को अभिशप्त हो गया है। कृषि एवं कृषकों से सम्बन्धित योजनाओं को जब तक वास्तविक धरातल पर नहीं उतारा जाता, तब तक उनसे इस क्षेत्र में विकास की कल्पना करना व्यर्थ है। योजनाओं और कृषकों के मध्य बिचौलियों की भूमिका का उन्मूलन करना होगा। कृषि के लिए समुचित जल नीति बने और साथ ही सूखा व बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के लिए प्रदेशों में कृषि जोखिम निधि की स्थापना हो। किसान के लिए उसके द्वारा उत्पादित उत्पादों को रखने, बाजार में बेचने और उचित मूल्य-प्राप्ति की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। ग्रामीण बाजारों को बेहतर बनाने के साथ ही ग्राम सभा स्तर पर कृषि सहकारी समिति का विक्रय केन्द्र होना चाहिए। इन सहकारी विक्रय केन्द्रों पर कृषि मानकों के अनुसार बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। कृषि साख व्यवस्था के पुनर्गठन की आवश्यकता है। किसानों को ऋण दिए जाने की व्यवस्था और सुविधाओं को सुदृढ़ करने के साथ ही उन्हें उदार भी बनाया जाना चाहिए। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित उद्योग धन्धों को प्रोत्साहित कर वहाँ के स्थानीय उत्पादों को दृष्टिगत रखते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना होनी चाहिए।

आर्थिक-सम्पन्नता प्राप्त करने एवं विपन्नता को दूर करने के लिए स्वामीजी ने औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने का आह्वान किया। उनके मौलिक चिन्तन में वितरण, श्रमिक एवं औद्योगिक सम्बन्ध मुख्य रूप से निहित थे। जब वे पश्चिमी देशों की आर्थिक, भौतिक एवं सामाजिक स्थिति की तुलना भारत से करते थे, तो उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे। इसके समाधान के लिए उनका मानना था कि लौह, इस्पात, ऊर्जा क्षेत्र तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में व्यापक अनुसंधान हो। उनकी दूरगामी सोच थी कि आनेवाले समय में उद्योग तथा वाणिज्य क्षेत्र में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहेगी, जो आज सत्य सिद्ध हो रही है। स्वामीजी का कहना था 'निरा वेदान्त आन्दोलन आम आदमी की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता।' इस सम्बन्ध में वे और भी कठोर होते हुए कहते थे – ''अरे ! धर्म-कर्म करने से पूर्व कूर्म अवतार की पूजा करनी चाहिए। पेट है, वह कूर्म। इसे ठण्ढ़ा किये बिना तेरी धर्म-कर्म की बात कोई नहीं सुनेगा। धर्म की कथा सुनाने से पूर्व इस देश के लोगों के पेट की चिन्ता को दूर करना होगा, अन्यथा कोरे व्याख्यान देने से कुछ लाभ होने वाला नहीं है।''

यहाँ स्वामीजी ने आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए धर्म का सहारा लेकर किंकर्तव्यविमूढ़ न होने का संदेश प्रेषित किया है। उनका आर्थिक चिन्तन व्यापक दृष्टिकोण से युक्त था। उन्होंने देश के गरीबों एवं अभावग्रस्त लोगों के सम्मानित जीवन जीने लायक स्थितियों के निर्माण को

केन्द्र में रखकर आर्थिक स्थितियों के निर्माण पर बल दिया। इस प्रकार स्वामीजी आर्थिक समृद्धि एवं नैतिक मूल्यों के मध्य उचित समन्वय स्थापित कर देश में शान्ति एवं समृद्धि लाने में विश्वास करते थे। उनका स्पष्ट मत था कि भारत के आत्मनिर्भर होने व विकास के लिए पश्चिमी मॉडल कतई उपयुक्त नहीं है। भारत की सामाजिक व्यवस्था एवं परिस्थितियों की दृष्टि से आर्थिक दृष्टिकोण कैसा हो, इसके बारे में स्वामीजी कहते हैं, 'पहले रोटी और फिर धर्म। सब बेचारे दरिद्र भूखों मर रहे हैं, तब हम उनमें व्यर्थ ही धर्म को ठूँसते हैं। किसी भी मतवाद से भूख की ज्वाला शान्त नहीं हो सकती।'' (मूलत: यह १८९३ में शिकागो में आयोजित धर्म सम्मेलन में स्वामीजी ने पश्चिमी विचारधारा पर प्रहार करते हुए यह वाक्यांश कहा था) स्वामीजी के दर्शन में सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का समाधान हमें मिलता है। देश की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं पर स्वामीजी चिन्तन करते थे। उन्होंने १८९४ ई. में मैसूर के महाराजा को लिखे पत्र में आम जनता की गरीबी को सभी अनर्थों की जड़ बताया। उन्होंने इस समस्या का समाधान आम लोगों में शिक्षा और उनमें आत्मविश्वास पैदा करना सरकार और शिक्षितों का मुख्य कार्य बताया था।

स्वामी विवेकानन्द जी के चिन्तन में श्रमिकों की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया गया है। भारत को आत्मनिर्भर बनने के लिए आवश्यक है कि वह श्रमिकों की स्थिति पर विशेष ध्यान दे। अब तक श्रमिकों के श्रम का यथोचित लाभ उठाने का प्रयास हमारे देश में नहीं हो पाया है। यदि इस दिशा में समुचित प्रयास होते, तो इस देश का श्रमिक वर्ग हमारे लिए बड़ा संसाधन सिद्ध होता, क्योंकि भारत में सस्ते श्रमिकों की उपलब्धता है। अत: यहाँ मुख्यत: श्रम-प्रधान क्षेत्रों का विकास होना चाहिए था, परन्तु व्यावहारिकता में भारत श्रम-प्रधान निर्यातों का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सका। इसके विपरीत यहाँ पूंजी-प्रधान निर्यातों को अधिक प्रोत्साहन दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे देश का विनिर्माण क्षेत्र श्रम-प्रधान निर्यात के लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल हो गया। देश के श्रमिकों के सम्बन्ध में अन्य समस्या है – इनका अधिकतर अकुशल होना और उनमें उचित कौशल का अभाव होना। श्रमिकों से जुड़ी एक अन्य गंभीर समस्या है – कृषि क्षेत्र में श्रमिकों की अधिकता व अप्रत्यक्ष रूप से अकुशल श्रमिकों को बढ़ावा दिया जाना। स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों के अनुसार श्रमिकों को आत्मनिर्भर बनाना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है, जब उन्हें आश्रित न बनाकर कौशल प्रदान किया जाए। इसके लिए उचित होगा कि कौशल विकास से जुड़ी परियोजनाओं के लिए वित्त, तकनीक एवं प्रशिक्षण जैसे पक्षों का निरन्तर उन्नयन उद्योग एवं समाज के सभी वर्गों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया जाए। यह संकल्पना तभी फलीभूत हो सकेगी, जब हम 'समावेशी संवृद्धि' की अवधारणा पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। समावेशी संवृद्धि की अवधारणा ही आत्मनिर्भर भारत का लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक हो सकती है। इस अवधारणा के अन्तर्गत संवृद्धि के लाभों एवं अवसरों तक समाज के सभी वर्गों की पहुँच सुनिश्चित की जाती है। इस संकल्पना पर बल देने से श्रमिक वर्ग का योगदान हमारी अर्थव्यवस्था को मिलेगा। श्रमिक वर्ग के उन्नयन का अप्रत्यक्ष लाभ हम कृषि क्षेत्र में अतिरेक (सरप्लस) मजदूर वर्ग के साथ विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों पर महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित कर सकेंगे। स्वामीजी की अर्थनीति के मूल में समावेशी संवृद्धि की संकल्पना निहित थी। उनके अनुसार भूखे को भोजन, अशिक्षितों को शिक्षा और गरीबों की सहायता करना ही वास्तविक विकास का आधार है। इसी सन्दर्भ में स्वामीजी ने कहा था, 'जब तक लाखों लोग भूखे हैं, अज्ञानी हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को कृतघ्न समझता हूँ, जो उनके बल पर शिक्षित बना, पर उनकी ओर ध्यान नहीं देता। अत: इन गरीबों, अनपढ़ों, अज्ञानियों एवं दुखियों को ही अपना भगवान मानो।'

इस प्रकार सबको समान सुविधा मिलने से ही समावेशी विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

समावेशी संवृद्धि के सम्बन्ध में यह कहना भी अनुचित होगा कि इस दिशा में हमारी सरकारों ने प्रयास ही नहीं किए। भारत में समावेशी संवृद्धि की झलक हमें स्वतंत्रता के पश्चात् उठाए गए कदमों से ही मिल जाती है। इस दिशा में किया गया पहला प्रयास देश की प्रथम पंचवर्षीय योजना में आरम्भ किए गए 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' में निहित था। इसके पश्चात् ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में पहली बार 'तीव्र एवं समावेशी विकास' को प्रत्यक्ष रूप से लक्ष्य बनाया गया। इसके पश्चात् बारहवीं पंचवर्षीय योजना में इस लक्ष्य को 'तीव्र, अधिक समावेशी और धारणीय विकास' तक बढ़ाया गया। वर्तमान सरकार का नारा 'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास' सरकार की समावेशी विकास की अहमियत एवं उसकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

सरकार द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों-प्रधानमन्त्री जन-धन योजना, आवास योजना, मुद्रा योजना, सुकन्या समृद्धि योजना एवं कौशल भारत मिशन व स्टार्टअप्स की दिशा में किए गए प्रयास इसके प्रमाण हैं।

भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने निस्संदेह आर्थिक विकास को तीव्र किया है, परन्तु औपचारिक क्षेत्र में रोजगार से बेरोजगारी में वृद्धि एक प्रमुख सामाजिक-आर्थिक समस्या बनकर उभरी है। यही समस्या हमें आत्मनिर्भरता के लक्ष्य से दूर कर रही है। इस प्रकार वैश्वीकरण ने औपचारिक क्षेत्र में रोजगार को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। वर्तमान औपचारिक ढाँचे के विकास में आधुनिक तकनीक का विकास, विदेशी कंपनियों से कड़ी प्रतिस्पर्धा और सस्ते आयात के कारण विपरीत प्रभाव पड़ा है। परिणामत: विनिर्माण क्षेत्र का ह्रास और रोजगार के अवसर घट गए। वैश्वीकरण से पूर्व सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयाँ बड़ी संख्या में संगठित रोजगारों का सृजन करती थीं, लेकिन वैश्वीकरण के पश्चात् इनकी भूमिका कम होने से संगठित रोजगारों में कमी हो गई। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था के पूर्ण संगठित होने तक अनौपचारिक क्षेत्र की आवश्यकता एवं महत्ता; दोनों को ही अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

स्वामीजी के चिन्तन या उनकी समर नीति पर गहनता से विचार करें और उनके दर्शन को वर्तमान परिस्थितियों से सम्बद्ध किया जाए, तो भारत के लिए आत्मनिर्भर बनने का उपयुक्त समय आ चुका है। स्वामीजी का सर्वाधिक ध्यान युवा-शक्ति पर केन्द्रित था। उनका युवाओं के प्रति स्पष्ट संदेश था कि कर्म करो और अपने काम को ही धर्म मानो। धन-उपार्जन अर्थात् पैसे कमाने के बारे में वे अथर्ववेद के एक मंत्र का उद्धरण देते हुए कहते थे - 'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर' यानी सौ हाथों से पैसे कमाओ और हजार हाथों से उसे बाँटो।

वर्तमान में भारत विश्व का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है, जहाँ की अधिकांश आबादी युवा है। इस प्रकार भारत 'जनसांख्यिकी लाभांश' की स्थिति में है। वस्तुत: जब किसी देश में युवा जनसंख्या अधिक होती है, तो उसका निष्कर्ष निकलता है कि वहाँ कार्य करने की क्षमता, सीखने की लगन, कार्य करने की कुशलता उच्च हो सकती है। लेकिन जनसांख्यिकी लाभांश अर्थात् इस युवा जनसंख्या का लाभ तभी उठाया जा सकता है, जब युवा जनसंख्या कुशल हो, उसे उपयुक्त अवसर प्राप्त हो और ऐसा वातावरण उपलब्ध हो, जिसमें वे अपना विकास कर सकें। भारतीय परिदृश्य पर नजर डालें, तो यहाँ पर युवा जनसंख्या तो अधिक दिखलाई देती है, लेकिन उनको रोजगार के अवसर, कार्य करने की स्वतंत्रता और बेहतर भविष्य की स्थिति दिखलाई नहीं पड़ती। इसके लिए भारतीय शिक्षा नीति में आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता का बोध किया जा रहा था। सद्य: सरकार द्वारा नई शिक्षा-नीति जारी की जा चुकी है। नई शिक्षा-नीति का सफल क्रियान्वयन होने से विद्यालयों में परम्परागत शिक्षा के स्थान पर रोजगारपरक शिक्षा का प्रचलन होगा। इस शिक्षा नीति में उच्च कौशल पर ध्यान देने के साथ ही निम्न कौशल वाली शिक्षा पर भी समुचित ध्यान दिया गया है। इससे रोजगार के अवसरों का समुचित सृजन हो पाएगा। इस प्रकार भारत युवा जनसंख्या के लिए नए रोजगारों का सृजन कर युवाओं को नया आधार प्रदान कर देश को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

स्वामीजी ने सामाजिक सुधारों की अपील की थी। उनका मानना था कि समाज सुधारकों में समाज के प्रति गहरी सहानुभूति होनी चाहिए। उनके अनुसार सामाजिक परिवर्तन के लिए वैचारिक परिवर्तन होना आवश्यक शर्त है। उन्होंने सामाजिक मुक्ति को आत्मोद्धार से जोड़ते हुए सामाजिक परिवर्तन के लिए कार्य किया। वे सामाजिक परिवर्तन की गति को तेज करके भारत में व्यापक परिवर्तन लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने शरीर, मन और आत्मा की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना, लेकिन उन्होंने आत्मा पर सबसे अधिक विश्वास किया। स्वामीजी का मानना था कि किसी एक वर्ग या समुदाय का परिवर्तन पूरे भारत को तब तक नहीं बदल सकता, जब तक कि सभी लोग इस दिशा में कार्य नहीं करें। इस प्रकार के क्रियान्वयन के अभाव में परिवर्तन अधूरा ही रहेगा। इसके लिए उन्होंने युवाओं, महिलाओं, गरीबों, श्रमिकों और किसानों के लिए काम करने का प्रयास किया था।

स्वामीजी के चिंतन के आधार पर आत्मनिर्भर भारत के लिए हमें निम्नलिखित उपाय करने की आवश्यकता है –

* औद्योगिक एवं विनिर्माण क्षेत्र में तीव्रता से वृद्धि करनी होगी, इसके लिए अर्थव्यवस्था में निवेश की आवश्यकता है।

* लघु एवं कुटीर उद्योगों के साथ-साथ परम्परागत हस्तशिल्प को बढ़ावा देना होगा।

* युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रेरित करना होगा और साथ ही राष्ट्रीय युवा नीति का क्रियान्वयन करना होगा।

* रोजगारपरक शिक्षा का अवसर उपलब्ध कराना होगा।

* नयी शिक्षा-नीति के क्रियान्वयन पर ध्यान केन्द्रित करना होगा।

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक भारत के ऐसे चिन्तक हैं, जिन्होंने आध्यात्मिकता के साथ-साथ देश की समस्याओं पर भी एक नए दृष्टिकोण से चिन्तन किया है। उनके विचारों ने समाज-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। उन्होंने आर्थिक नीतियों और अर्थव्यवस्था को प्रभावित करनेवाले मुख्य पहलुओं पर अपनी राय रखी है। गरीबी दूर करने, कृषि एवं औद्योगिक विकास और श्रमिकों की स्थिति पर स्वामीजी ने काफी बल दिया था। स्वामीजी वस्तुत: कृषकों एवं श्रमिकों को अपने ही पुरुषार्थ एवं उद्यम से स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। अत: यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा कि उनके आर्थिक-औद्योगिक चिन्तन के मूल में श्रमिक, कृषक और दरिद्र-नारायण ही हैं। उनकी दृष्टि में भारत की गरीबी के लिए यूरोपीय देश उत्तरदायी थे। इन देशों ने औपनिवेशिक नीति के तहत भारत में अपना पाँव जमाया और फिर यहाँ की अकूत सम्पत्ति को लूटकर ले गए। इन देशों ने भारत के उद्योग-धंधों को नष्ट कर दिया। इसके साथ ही वे मानते थे कि इस बाह्य आक्रमण के साथ ही देश की आन्तरिक स्थिति भी इसके लिए उत्तरदायी है। भारतीय समाज में आई जड़ता, यहाँ की कुरीतियाँ और अन्धविश्वास ऐसे कारक थे, जिन्होंने देश के विकास को अवरुद्ध किया। यही कारण था कि उन्होंने अन्धविश्वास युक्त धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करने के साथ ही श्रम की महत्ता को भी अपने संदेशों एवं चिन्तन के माध्यम से स्थापित किया। स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन में समस्त समस्याओं का समाधान शिक्षा में निहित है। शिक्षा से ही आत्मविश्वास, चारित्रिक उत्थान एवं आत्मनिर्भरता आती है। इसके साथ ही वे राष्ट्र के सामाजिक उत्थान में महिलाओं के सशक्त होने के प्रबल समर्थक थे। इसके लिए वे चाहते थे कि महिलाओं के लिए आत्मसम्मान, आत्मनिर्णय एवं चारित्रिक उत्थान की दिशा में उचित प्रयास हों। वर्तमान में इस परिप्रेक्ष्य में यदि विचार किया जाए, तो भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पुरुषों के समान नहीं है। वे स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक अवसरों जैसे विभिन्न घटकों में पुरुषों से पिछड़ी हुई हैं। अत: इन सभी पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करना महत्त्वपूर्ण है। इस दिशा में उचित प्रयास महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त करने के साथ ही भारत के सशक्तीकरण व उसके आत्मनिर्भर बनने में सहायक सिद्ध होंगे। इस प्रकार स्वामीजी ने संसार के समस्त राष्ट्रों में भारत का स्थान अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठित करने के लिए वैचारिक श्रेष्ठता का सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। उनकी इस वैचारिक श्रेष्ठता को मूर्त रूप देने पर निश्चय ही भारत आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकेगा। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं आलेख – १. सफलता के सोपान, रामकृष्ण मठ, पृष्ठ सं. ३९, **२.** विवेकानन्द जयन्ती : स्वामीजी का आर्थिक दर्शन पर अमित पाण्डेय का आलेख, जीबिजनेश वेबसाइट पर १२ जनवरी, २०१९ को प्रकाशित ४. स्वामी विवेकानन्द का सामाजिक-आर्थिक चिन्तन : संकलन-संपादन-अमरनाथ डोगरा, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या : ३० ५. 'स्वामी कल्याणदेव के प्रेरणा सन्त - स्वामी विवेकानन्द' लेखक - स्वामी प्रपत्त्यानन्द, विवेक ज्योति, २०११, सितम्बर, पृष्ठ सं. ४२० ६. स्वामी विवेकानन्द का सामाजिक-आर्थिक चिन्तन : संकलन-संपादन-अमरनाथ डोगरा, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या : संख्या २२ ७. पृष्ठ संख्या २९ ८. भारतीयता के ध्वजवाहक 'स्वामी विवेकानन्द' लेख : डेलीहंट वेबसाइट पर प्रकाशित आलेख। ९. सफलता के सोपान, रामकृष्ण मठ, पृष्ठ संख्या ५० १०. विवेकानन्द जयन्ती : स्वामीजी का आर्थिक दर्शन पर अमित पाण्डेय का आलेख, जीबिजनेश वेबसाइट पर १२ जनवरी, २०१९ को प्रकाशित.

पुरखों की थाती

अन्नं न निन्द्यात्। तद् व्रतम्। प्राणो ना अन्नम्।
शरीरम् अन्नादम्। ... अन्नं न परिचक्षीत। ...
अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्।।७२३।।

– अन्न की निन्दा मत करो। यही एक व्रत है। प्राण ही अन्न है। शरीर अन्न का भोक्ता है।... अन्न की अवहेलना मत करो।... खूब अन्न पैदा करो। यही एक व्रत है। (उपनिषद्)

आहार-शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः। सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।७२४।।

– आहार के शुद्ध होने पर चित्त या अन्त:करण शुद्ध होता है। अन्त:करण शुद्ध होने पर (आत्मा की) स्मृति स्थिर हो जाती है और स्मृतिलाभ हो जाने पर मन की समस्त गाँठें खुल जाती हैं। (उपनिषद्)

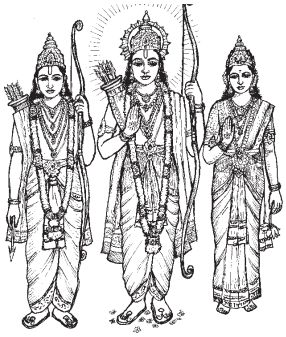

रामराज्य का स्वरूप (२/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

अब भगवान का सूत्र यह था कि यह जो तुमने शाप दिया कि तुम मनुष्य के रूप में जन्म लो, तो मानव जाति के ऊपर तुमने कितनी बड़ी कृपा की ! कैसे? बोले – सारी सृष्टि का निर्माण कर्म के अधीन है, कर्म के द्वारा सृष्टि चल रही है और कर्म का संचालक मैं बैठा हुआ हूँ, मैं द्रष्टा बना हुआ हूँ। तुमने तो एक बहुत बढ़िया कार्य किया न ! मुझे भी तुमने लोक-कल्याण के लिए उस सीमा में लाने की चेष्टा की। बहुत अच्छी बात यह हो गई कि अब किसी को उलाहना देने का अधिकार नहीं रह गया। क्योंकि पहले तो तुमने भी उलाहना दिया कि तुम तो मनमानी करने के लिये स्वतन्त्र हो, पर अब यह सिद्ध हो गया कि मैं जब मनुष्य बनूँगा, तो मैं मनमानी तो नहीं कर पाऊँगा और ऐसी परिस्थिति में तुमने कितना बड़ा कल्याण किया। तुम तो कह रहे हो कि मैंने मनुष्य बनकर तुम्हें ठगा, पर तुमने तो मुझे मनुष्य बनाकर सारे संसार के मनुष्यों को कर्मफल से मुक्ति का मार्ग दे दिया। इतना बड़ा उपकार किया तुमने! तुम्हारे क्रोध पर, तुम्हारे शाप पर जब मेरी दृष्टि गहराई में जाती है, तब नारद मुझे यही अनुभव होता है कि संत कितना उदार होता है ! संत ने जब क्रोध में भी भगवान को संसार में आने के लिये बाध्य कर दिया, तो भगवान अगर सृष्टि से अलग रहकर मनुष्य को उपदेश दें कि तुम सुख-दुख से मुक्त हो जाओ, तो वह तो ऐसा लगेगा कि जैसे व्यक्ति स्वयं तो सुख-दुख का अनुभव न करे और दूसरों को सुख-दुख से मुक्त होने का उपदेश दे। जैसे कोई व्यक्ति भर पेट भोजन करे और भूखे व्यक्तियों को उपदेश दे कि भोजन में क्या रखा है, वह तो ऐसी वस्तु है, जो कुछ क्षणों के लिए तृप्ति देनेवाली है ! तो तुमने तो बड़ी कृपा की। मैंने तुम्हें व्यक्तिगत दुख दिया और तुमने सारे संसार को सुख देने के लिये, मुझे अवतार लेने के लिये बाध्य किया। भक्तों का कहना क्या है? यह तो ठीक है कि व्यक्ति कर्मफल भोगने के लिए बाध्य है, पर सृष्टि किसने बनाई, कर्म का निर्माण किसने किया और सृष्टि में जो कर्म है, उसके मूल में प्रेरक कौन है? यह थोड़ा ऐसा सिद्धान्त है कि लोग इसका दुरुपयोग करते भी हैं, किया भी जा सकता है, क्योंकि गीता में भगवान कहते हैं, रामायण में भी यह बात कही गई और नारदजी के प्रसंग में भी यह बात कही गई। क्या?

नारद में काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ये सारे दुर्गुण आ गये। लेकिन इसके मूल में कौन है? आगे चलकर दो बातें हुईं। पहले तो नारद ने शाप दिया और बाद में जब नारद को यह लगा कि मैंने शाप देकर ठीक नहीं किया, तो नारद भगवान से क्षमा-याचना करने लगे –

मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। १/१३७/४

मैंने बड़ी भूल की, आपको शाप भी दे दिया, आपके लिए गाली का भी प्रयोग किया ! तब भगवान ने एक अनोखा सिद्धान्त कह दिया कि नारद, यह तुमने जो किया, वह अपनी इच्छा से किया कि मेरी इच्छा से किया? तब भगवान ने एक वाक्य कह दिया –

मम इच्छा कह दीनदयाला।

नारद, जीव कुछ करने में स्वतन्त्र थोड़े ही है, वस्तुतः मूल में तो मैं ही हूँ। मैंने जो तुमसे कराया, वही तुमने किया। गीता में भगवान कहते हैं न ! –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया।।

गोस्वामीजी कहते हैं –

करन राम चाहइ सो होई।
करइ अन्यथा अस नहिं कोई।। १/१२७/१

जो राम चाहते हैं, वही व्यक्ति करता है। मानो भगवान

ने नारद से इस आधार पर कहा कि कर्म के मूल में, अगर कर्म का नियामक मैं ही हूँ और मेरी ही शक्ति से मनुष्य कर्म करता है, तो चलो, कम-से-कम मैं भी मनुष्य बनकर कर्म का फल भोगता हुआ दिखाई दूँगा, तो लोगों को यह संतोष हो जायेगा कि ईश्वर जो परम स्वतन्त्र था, वह अब कर्म और उसके परिणाम की सीमा में आ गया। इस सिद्धान्त में भयावह कठिनाई यही है कि इस सिद्धान्त के आधार पर व्यक्ति अपनी बुराई का समर्थन कर सकता है। लोग करते भी हैं और यह पूछते भी हैं कि जब सब कुछ भगवान ही कराते हैं, तो हमें दण्ड क्यों मिलना चाहिए? एक सज्जन ने मुझसे कहा, तो मैंने यही कहा – सब कुछ भगवान कराते हैं, अगर यही आप मान लें, तो भी कल्याण है। क्या? आप यह मान लें कि चोरी भगवान ने कराई, तो यह भी मान लें कि सजा भी भगवान ने ही दिलाई है। आप अगर यह मान लें कि चोरी भगवान ने कराई और सजा किसी और ने दिया, तो आपने बात को पूरी तरह से कहाँ माना।

नारद के प्रसंग में दोनों पक्ष हैं, नारद में ये दोष आए, वे दोष आए, यह कमी आई, इसकी व्याख्या भी आपने सुनी होगी। लेकिन उसकी दूसरी व्याख्या भी है। जब पार्वतीजी भगवान शंकर से कहने लगीं कि महाराज आपने नारदजी की कथा सुनाई, जब इतने बड़े महापुरुष के जीवन में इतनी बुराई आ सकती है, तो हम लोगों की क्या दशा होगी? तो शंकरजी हँसने लगे और शंकरजी ने तुरन्त क्या कह दिया?

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ।।
(१/१२४/क)

पार्वती, न तो कोई ज्ञानी है, न तो कोई मूर्ख है, भगवान जब जिसको ज्ञानी बनाते हैं, तब वह ज्ञानी बन जाता है और जब मूर्ख बनाते हैं, तो वह मूर्ख बन जाता है।

नारदजी ने जो कुछ किया, वह भगवान ने कराया। ये दोनों बातें बहुत सावधानी से समझ लेने की है। बालि ने भगवान से पूछ दिया कि आप धर्म की रक्षा के लिए अवतरित हुए हैं, तो आपने मुझे व्याध की तरह छिपकर क्यों मारा? तो भगवान का उत्तर था, अगर तुम यह मानते हो कि मैंने धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया, तो तुमने स्वयं मान लिया कि कोई अधर्म करे, तो उसको दण्ड देना मेरा कर्तव्य है। इसीलिए तो मेरा अवतार हुआ है। भगवान कहते हैं –

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई।
ताहि बधें कछु पाप न होई।। ४/८/७

इससे भगवान ने मानो यह कहा कि यदि तुम मुझे कर्मफल-दाता मानते हो, तो कर्मफल देने के सिद्धान्त के अनुकूल तुम्हारे कर्म का फल देना मेरे लिये अवश्यम्भावी था, यह तो मुझे करना ही था, तुम्हारी मान्यता के अनुकूल ही यह मेरा उत्तर है। इसलिये हम जिस सिद्धान्त को मानें, उसे सही अर्थों में मानें। नारद ने जब भगवान को कर्म का परिणाम देकर मनुष्य बनने के लिए प्रेरित किया, तो भगवान के अवतार का लाभ क्या हुआ? भगवान आए।

प्रारम्भ में महाराज दशरथ के मन में रामराज्य बनाने का संकल्प हुआ। पर रामराज्य नहीं बना, तो क्यों नहीं बना? उसमें ये ही चारों कारण – काल, कर्म, स्वभाव और गुण आपको मिलेंगे। बाद में जब रामराज्य की स्थापना हुई, तो काल, कर्म, स्वभाव और गुण, इन चारों से मुक्ति मिल गई। भगवान का अभिप्राय यह था कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर मैं लोगों को यह बताऊँगा कि कैसे काल, कर्म, स्वभाव और गुण के विघ्न जीवन में आते हैं और इन विघ्नों को कैसे हम जीतें, कैसे हम उस पर विजय प्राप्त करें, कैसे हम उनके परिणामों से बचें। इसलिए नारद तुमने यह शाप देकर, मुझे मनुष्य बनने के लिये प्रेरित करके संसार का इतना बड़ा कल्याण किया है ! यह तो तुम जैसे संत के द्वारा ही सम्भव है ! फिर भगवान ने नारद से यह विनोद भी किया कि तुम्हें इतने से भी संतोष नहीं हुआ, तो तुमने कह दिया –

नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी।। १/१३६/८

तुम्हें तो शाप देना नहीं आया। क्यों? बोले मैंने तुम्हारा विवाह नहीं होने दिया। तो बदले में कह देते कि तुम्हारा भी विवाह नहीं होगा, तब तो बदला हो गया होता। पर जब तुमने कह दिया कि पत्नी के वियोग में तुम्हें रोना पड़ेगा, तो तुमने विवाह का आशीर्वाद दे दिया। जब विवाह होगा, तभी तो पत्नी का वियोग होगा। चलो नारद, संयोग के रस का अनुभव तो मैंने बहुत किया, पर प्रिय-वियोग के रस का, जो दुख की अनुभूति होती है, उस रस की अनुभूति के लिये भी तुमने मुझे प्रेरित किया। वैकुण्ठ में रहते-रहते, सामीप्य में रहते-रहते वियोग के बाद, दुःख के बाद जो

मिलन के आनन्द की अनुभूति है, उस अनुभूति की दिशा में तुमने मुझे प्रेरित कर दिया, तो दूसरा वरदान भी बड़ा कल्याणकारी है।

तीसरा वरदान? मैंने तुम्हें बन्दर की आकृति दी। दूसरा व्यक्ति यदि होता, तो शायद यह कहता कि तुमने मुझे बन्दर की आकृति दी, तो बन्दर तुम्हें जीवन भर कष्ट देंगे। तब तो तुम्हारा शाप ठीक रहता, पर तुम शाप भी देने चले, तो तुम्हारे मुँह से वरदान निकला –

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी।
करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी।। १/१३६/७

बन्दर तुम्हारी सहायता करेंगे। मैंने जो तुम्हारा अपकार किया, उसके बदले में तुमने मेरा उपकार किया। तुम जैसे संत के शाप को भी मैं तो वरदान समझकर सिरमाथे पर रखता हूँ।

पर कल वह बात जो अन्य दिशा में चली गई, उसका मूल तात्पर्य यह हुआ कि जहाँ तक व्यक्ति के कर्म का परिणाम का सम्बन्ध है, व्यक्ति अगर परिणाम में अकेला भागीदार रहेगा, तो रामराज्य की स्थापना कभी भी नहीं हो सकेगी। जब संसार में प्रत्येक व्यक्ति और भगवान में भी इतनी करुणा उत्पन्न हो जाय कि भगवान भी उनकी बुराई को बुराई के रूप न लें, तो बात बड़ी अटपटी लगती है। क्या? तुलसीदासजी का वह दोहा प्रसिद्ध है, जिसमें उन्होंने मीठा व्यंग्य किया –

खीझें पे मुकती दई रीझे दीन्ही लंक।
अंधाधुंध दरबार है, तुलसी भजहु निसंक।।

रावण से खीझ गये, तो उसको मुक्ति दे दिया और विभीषण से रीझ गये, तो उसे लंका दे दिया। पर इसका अर्थ क्या हुआ? भगवान यहाँ से प्रारम्भ करते हैं न।

अब इसे आप प्रतापभानु के प्रसंग से जोड़िए। प्रतापभानु रावण बना। पूर्वजन्म में वह भगवान की भक्ति करता था। उसकी भक्ति में भी क्या दोष आ गया, वह भी एक प्रसंग है, पर वह भक्ति करता था। बाद में उसको ऐसा लगा कि मैं इतनी बुराइयों से घिर गया और भगवान ने मेरी सहायता नहीं की, तो उसके मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई कि ऐसी भक्ति और भगवान से क्या लाभ? ऐसी भक्ति से क्या लाभ? मैंने इतनी भक्ति की, पर ईश्वर ने रक्षा नहीं की। इसलिए अब जो अगला जन्म लेंगे, तो भक्ति नहीं करेंगे, तब भगवान का विरोध ही करेंगे। इस प्रतिक्रिया के रूप में जब उसने रावण के रूप में जन्म लिया, तो भक्ति और भगवान की विरोध रूपी वृत्ति उसके जीवन में आई। इसीलिये तुलसीदास जी ने एक दोहे में बड़ी विलक्षण माँग की। उन्होंने भगवान से कहा कि महाराज, मैं चाहता हूँ कि मुझे आपसे प्रेम हो जाय। भगवान ने कहा, अगर प्रेम न हो सके तो? तो कहने लगे –

बने सो रघुबर सो बने कै बिगरै भरपूर।

महाराज, या तो आपसे बने, या तो फिर बिगड़े तो भरपूर बिगड़े।

प्रतापभानु के रूप में उसकी भगवान से बनी और रावण के रूप में बिगड़ी। भगवान अन्त में दोनों का निर्वाह करते हैं। दिखाई देता है कि प्रत्यक्ष रूप में कर्म का परिणाम देने के लिये भगवान उसको भी अपने स्थान पर बैठाते हैं। रावण के कर्म में जो त्रुटियाँ हैं, उसका दण्ड रावण को भोगना पड़ता है। रावण के सिर पर भगवान बाणों का प्रहार करते हैं, उसकी भुजाओं पर प्रहार करते हैं, उसकी नाभि में करते हैं, रावण को मृत्यु दण्ड देते हैं। यह मानो उसके कर्मों का फल है, परिणाम है, पर उसके मूल में भगवान की करुणा का पक्ष ही है। गोस्वामीजी कहते हैं, जब रावण की मृत्यु होती है –

तासु तेज समान प्रभु आनन।
हरषे देखि संभु चतुरानन।। ६/१०२/९

रावण का तेज आकर भगवान में समा गया। उसका अभिप्राय मानो यह हुआ कि भगवान ने कहा कि ठीक है, तुमको ऐसा लगा और तुमने प्रतिक्रिया स्वीकार करके मेरे विरुद्ध आचरण किया तथा लोक की दृष्टि में कर्म का परिणाम तुम्हें देते हुए भी मैं दिखाई दे रहा हूँ, पर वस्तुत: मैं तुम्हारे कर्म का परिणाम तुम्हें नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि अन्ततोगत्वा जब मैं तुम्हें मुक्ति दे रहा हूँ, तो मैं तुम्हें याद दिला देना चाहता हूँ कि प्रतापभानु के रूप में तुमने जो मेरी भक्ति की थी, वह भक्ति व्यर्थ नहीं हुई। तुम्हारे खाते में तुम्हारी वह पूँजी पूरी तरह से विद्यमान थी। आज वह तुम्हें मुक्ति के रूप में प्राप्त हो रही है। रावण के रूप में वह जिन-जिन का विरोधी बना, वह विरोधी बनने का संकेत सर्वत्र आपको मिलेगा। वह ब्राह्मणों और ऋषियों का विरोधी इसलिए बन गया कि वह स्वयं एक कपट मुनि के द्वारा ठगा गया। वह कहावत बड़ा प्रसिद्ध है न कि 'दूध का जला छाँछ को भी

फूँक कर पीता है'। एक साधु से ठगा गया, तो समस्त साधुओं के प्रति उसके मन में विरोध हो गया। पर विचित्र विडम्बना क्या है? वह साधु और ब्राह्मणों का विरोधी हो गया। जिस साधु ने उसे ठगा था, वह तो नकली साधु था। पर उसका परिणाम उलटा हुआ। क्या? साधुओं का विरोधी तो हो गया, पर जब वह दूसरे को ठगने चला, तो स्वयं भी नकली साधु बन गया। उसको लगा कि किसी को ठगना हो, तो नकली साधु बनकर ठगने में जितनी सुविधा है, उतना और कुछ बनकर ठगने में नहीं है। वह पूर्वजन्म में ठगा गया, तो नकली साधु के द्वारा ही ठगा गया। उसके पश्चात् उसने ब्राह्मणों को भोजन करने के लिए बुलाया और जिस समय ब्राह्मणों के द्वारा शाप दिया गया, उस समय वह ब्राह्मणों को भोजन परोस रहा था और उसे यह पता नहीं था कि इस भोजन में अखाद्य वस्तु मिला दी गई है। जब भोजन परोसा गया और ब्राह्मण जब भोजन करने के लिये हाथ बढ़ा ही रहे थे कि अचानक आकाशवाणी हुई। आकाशवाणी में कहा गया –

बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू।

है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू।। १/१७२/६

ब्राह्मणो ! आप लोग इस भोजन को मत खाइए, उठकर अपने-अपने घर चले जाइए।

उस आकाशवाणी को ब्राह्मणों ने अगर ठीक से समझ लिया होता, तो यह अनर्थ न हुआ होता। उठकर चले जाते। बाद में प्रतापभानु को अपनी भूल का भान हो जाता कि किस प्रकार से वह कपट मुनि के द्वारा ठगा गया। लेकिन आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मणों को क्रोध आ गया और खड़े हो गये और उन्होंने प्रतापभानु को शाप दे दिया।

बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह विचार।

जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार।। १/१७३

अरे राजा, तूने बिना विचार किए ऐसा कार्य किया है। हम शाप देते हैं, जा, अगले जन्म में राक्षस हो जा। परिणाम क्या हुआ? आकाशवाणी हुई –

बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। १/१७३/५

अगर उसने अपराध किया, तो वह अपराधी तो था ही, किन्तु उसने अनजाने में अपराध किया और आप लोगों ने उसे इतना बड़ा दण्ड दे दिया, दण्ड देने के पहले आपने विचार नहीं किया। यह न्याय नहीं है। क्या अनजाने में हुए अपराध के लिए इतना बड़ा दण्ड दिया जाना चाहिए? उसकी प्रतिक्रिया रावण के जीवन में क्या हुई? प्रतापभानु जब रावण के रूप में जन्म लेता है, तब वह ब्राह्मणों को विशेष रूप से खाता है। क्योंकि इनको खिलाने से शाप मिला, तो इनको खाना ही ठीक रहेगा। इन्हें समाप्त ही कर देना ठीक है। इस तरह से क्रिया-प्रतिक्रिया का एक चक्र समाज में चलता है। जिस प्रकार से प्रतापभानु की गाथा है, यह केवल प्रतापभानु के जीवन की गाथा नहीं है, अगर हम और आप अपने सामाजिक प्रतिक्रिया पर दृष्टि डालें, तो हम लोगों के जीवन में प्रतापभानु का ही जीवन-चरित्र दिखाई देगा। इस तरह से एक पक्ष यह है।

दूसरा पक्ष है मनु का पक्ष। मनु आगे चल कर दशरथ बनते हैं। मनु भी वन की यात्रा करते हैं। पर उनकी यात्रा का उद्देश्य दूसरा है। प्रतापभानु विन्ध्याचल पर्वत पर गया और किस तरह से क्रिया-प्रतिक्रिया के चक्र में पड़ा। किस तरह वह रावण बन गया, सोने के मृग को लेकर चला और साधु का वेष बनाकर श्रीसीताजी का हरण किया। जिस तरह समाज में व्यक्ति ठगा जाता है, उसी तरह से वह दूसरों को भी ठगने की चेष्टा करता है। दूसरे उससे जैसा व्यवहार करते हैं, बदले में वह वैसा ही व्यवहार दूसरों से करता है। इस तरह से क्रिया-प्रतिक्रिया का एक चक्र आपको प्रतापभानु और रावण के जीवन में मिलेगा।

दूसरी ओर महाराज मनु। ये मानव जाति के आदि पुरुष हैं और उन्होंने भी वन की यात्रा की, पर दोनों में अन्तर है। प्रतापभानु ने यात्रा की थी विन्धाचल की और मनु ने यात्रा की नैमिषारण्य की। उस नैमिषारण्य की यात्रा में उन्होंने सबसे पहले गोमती नदी में स्नान किया और तब मुनियों के आश्रम में जाकर सत्संग किया, पुराणों की कथाओं का श्रवण किया। मन्त्र का जप किया और भगवान का साक्षात्कार किया और उन्होंने भगवान को पुत्र रूप में पाने का वरदान प्राप्त किया। इस तरह से यदि आप मनु की पूर्व साधना पर दृष्टि डालें, तो मानों मनुष्य को दशरथ बनाने की यह प्रक्रिया है और दशरथ बनकर उन्होंने श्रीराम को पा लिया। पर रामराज्य की स्थापना दशरथ नहीं कर पाते, रामराज्य की स्थापना के लिए दशरथ से भी अधिक उत्कृष्ट भूमिका की आवश्यकता है और वह भूमिका श्रीभरत जी के द्वारा सम्पन्न होती है। कल मैं इस तत्त्व पर आपके सामने चर्चा करूँगा कि कैसे दशरथ के बाद श्रीभरत का चरित्र सामने आता है और रामराज्य की भूमिका बनती है। बोलिये सियावर रामचन्द्र की जय ! **(क्रमशः)**

सत्यसूक्तम्

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

प्रा. दूधाधारी संस्कृत महाविद्यालय और महिला महाविद्यालय, रायपुर

सत्य ! ब्रह्म त्वमेवर्तं ब्रह्मणो लक्षणं मतम्।
त्वमेव परमो धर्मः त्वयि लोकाः प्रतिष्ठिताः।।१।।

– हे सत्य ! तुम्ही ब्रह्म हो, ऋत हो और ब्रह्म के लक्षण माने गये हो। तुम्ही श्रेष्ठ धर्म हो। तुममें ही सारे लोक प्रतिष्ठित हैं।

सत्यमुपासते विष्णुः सदाशिवः प्रजापतिः।
तन्महिम्नो बभूवुस्ते यज्वानः सृष्टिकर्मणः।।२।।

– भगवान विष्णु, सदाशिव और प्रजापति सत्य की उपासना करते हैं और उसी सत्य की महिमा से वे सृष्टि-कर्म के यज्ञकर्ता बन सके।

त्वं कठिनं म्रदिष्ठं च स्वतेजोवृतसंवृतम्।
क्वचिच्छान्तं क्वचिज्ज्योतिः दुःस्थलेष्वपि लक्ष्यसे।।३।।

– हे सत्य ! तुम कठिन और कोमलतम भी हो। अपने तेज से ढके हुए हो। तुम कहीं शान्त, कहीं ज्योतिर्मय रूप में और कभी-कभी दूषित या दुर्गम स्थलों पर भी दीखते हो।

सत्यमूर्ध्वमधः शास्ति ततमेतत्समन्ततः।
चैतन्यमधितिष्ठत्त्वं निरपेक्षं स्फुरन्मतौ।।४।।

– सत्य ऊर्ध्वलोक में शासन करता है और निम्नलोक में भी। यह चारों ओर व्याप्त है। हे सत्य ! तुम चेतना में निरपेक्षतया रहते हुए मति में स्फुरित होते रहते हो।

सूक्ष्ममणुतमं रूपं दुर्दर्शं येन केनचित्।
दृश्य केचन मुच्यन्ते नेत्रान्धाः प्रायशो जनाः।।५।।

– सत्य का रूप अणु से भी अत्यन्त सूक्ष्म है, उसके रूप को देख पाना सरल नहीं है, तथापि उसके रूप को देखनेवाले कुछ तो मुक्त हो जाते हैं और कुछ (तेज न सह पाने से) नेत्रान्ध हो जाते हैं।

अनन्तदीप्तिगूढस्त्वं संवीक्षितुं न शक्यसे।
दृष्ट्वामनावृतं सोढं जातः सत्यमयः पुमान्।।६।।

– हे सत्य ! अनन्त दीप्ति में छिपे हुए तुमको देखा नहीं जा सकता। (किन्तु यदि कोई तुम्हारे अनावृत रूप को देखकर सहन कर ले, तो वह मनुष्य सत्यमय ही बन जाता है।

कामं रसातलं क्षिप्तं सुदूरं पर्वतादपि।
भित्त्वानश्यत् समायाति काले सत्यं सनातनम्।।७।।

– भले ही दूर रसातल में फेंक दिया जाय या पहाड़ से गिरा दिया जाय, किन्तु सनातन सत्य समाप्त नहीं होता, बल्कि सबको भेदकर सही समय में प्रकट हो जाता है।

स्निह्यन्ति त्वयि दूरेण एके भीता पलायिताः।
ते विश्वजयिनो वीरा निर्भयास्ते पदानुगाः।।८।।

– हे सत्य ! कुछ लोग तुम्हें भयवश दूर से प्रेम करते हैं, कुछ डरकर भाग जाते हैं, किन्तु जो निर्भय होकर तुम्हारा अनुसरण करते हैं, वे विश्वविजेता होते हैं। ○○○

पुस्तक समीक्षा

१. गीता का पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष

व्याख्याकार – स्वामी संवित् सुबोधगिरि

पृष्ठ - ३१२, मूल्य – २५०/रुपये

२. राष्ट्रीय समस्या और समाधान

लेखक – स्वामी संवित् सुबोधगिरि

पृष्ठ – ५६८, मूल्य – ५००/रुपये

प्रकाशक एवं वितरक – स्वामी संवित् सुबोधगिरि, श्री नृसिंह भवन, संन्यास आश्रम, भक्तानन्द शिवमन्दिर, भीनासर –३३४४०३, बीकानेर (राजस्थान)

मो. – ०९४१३७ ६९१३९

भगवान श्रीकृष्ण भारत की आत्मा हैं। भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। उनके द्वारा रणभूमि में अर्जुन को दिये हुए उपदेश मानव मात्र के लिये सदा प्रासंगिक हैं। भगवान की सनातन वाणी सनातन काल तक मानव को उसके उद्देश्य एवं कर्तव्य के प्रति सजग करती रहती है और उद्देश्यप्राप्ति में संघर्ष हेतु शक्ति प्रदान करती है।

सुविज्ञ संन्यासी श्री सुबोधगिरि जी महाराज ने 'गीता के पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष' नामक पुस्तक की रचना की है, जिसमें गीता के पहले, दूसरे अध्यायों की व्याख्या और तीसरे

शेष भाग पृष्ठ २३८ पर

असफलता को सफलता में बदलें

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन, उत्तर प्रदेश

(गतांक से आगे)

व्यवहार में कटुता – मनुष्य एक सामाजिक व्यक्ति है और प्रत्येक मनुष्य शान्तिपूर्वक रहना चाहता है। अत: इसके लिए दूसरों के साथ उसके सम्बन्ध मधुर होने चाहिए। यदि हमारे व्यवहार में कटुता होगी, तो उसका प्रभाव हमारे जीवन पर भी पड़ेगा। मन में अशान्ति रहने पर हमारी कार्यकुशलता कम हो जाती है और ऐसे में असफलता स्वाभाविक है। वर्तमान युग सहयोग का युग है। आज हमें प्रत्येक कार्य सम्पन्न करने के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। यदि हमारा व्यवहार रुक्ष हो, तो हमारे सम्बन्ध दूसरों से शीघ्र ही टूट जाते हैं और इसके कारण हमारे सहयोगी हमसे दूर चले जाते हैं। इससे हम स्वयं भी तनाव में आ जाते हैं और सहयोग न पाने के कारण किसी भी कार्य को सम्पन्न करना दुष्कर हो जाता है। यदि हमारे व्यवहार में कटुता होगी, तो हम टीम-वर्क (सामूहिक कार्य) नहीं कर सकेंगे। कभी-कभी व्यवहार की कटुता के कारण सफलता भी असफलता में और व्यवहार में मधुरता के कारण असफलता सफलता में बदल जाती है।

उत्साह का अभाव – किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए हमारे अंदर उत्साह का रहना अत्यंत आवश्यक है। एक निरुत्साही व्यक्ति का सफल होना असंभव होता है। कभी-कभी असफलता मिलने के कारण व्यक्ति निरुत्साहित हो जाता है। उत्साह का अभाव मन में नकारात्मक विचार लाता है। कभी-कभी नकारात्मक सोच हमें निरुत्साहित कर देते हैं। पर इन सभी दशाओं में उत्साह का अभाव सफलता की ओर नहीं जाता। किसी कार्य को प्रारम्भ करने के बाद यदि हममें उत्साह न रहे, तो हम उस कार्य को सफलतापूर्वक नहीं कर सकते। वहीं उत्साह उस ईंधन की भाँति होता है, जो उस कार्य को निरन्तर करते रहने की प्रेरणा देते रहता है। उत्साह वह दीपक है, जो मसाल जलाने का कार्य कर सकता है। युद्ध से पूर्व सेनापति सैनिकों को उत्साहित करनेवाले भाषण देते हैं, जिससे सैनिकों का रक्त और भी गर्म हो जाता है और तब वे मृत्यु से खेलने के लिए भी तत्पर हो जाते हैं। इस प्रकार उत्साह सफलता प्राप्त करने की महत्त्वपूर्ण इकाई है, जिसे हमें बनाए रखना चाहिए।

समय से ताल मिलाकर चलना – किन्हीं व्यवसायियों का पीढ़ियों से घड़ी का बड़ा व्यवसाय था। वे सभी सुविधा-सम्पन्न जीवनयापन कर रहे थे। ऐसे समय में मोबाइल का आविष्कार होता है। लोगों की रुचि धीरे-धीरे मोबाइल की ओर बढ़ने लगती है, पर तब भी घड़ी के व्यवसायी निश्चिन्त होकर बैठे रहे। धीरे-धीरे एक ऐसा समय आ जाता है, जब वे कीमती से कीमती घड़ियाँ लेकर बैठे रहते हैं, पर कोई खरीददार नहीं आता। वहीं दूसरी ओर समय की माँग को समझते हुए छोटे व्यवसायी मोबाइल का व्यवसाय करना प्रारम्भ करते हैं और दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति करते हैं। जब कम्प्यूटर का आगमन हुआ, तब बहुत-से विद्यार्थियों ने इसकी अवहेलना की, पर भविष्य में जब उन्हें कार्य खोजना पड़ा, तो कम्प्यूटर न जानने के कारण वे पीछे रह गए। अत: हमें समय की माँग के अनुसार स्वयं को परिवर्तित करना चाहिए। यदि हमें प्रगति करनी हो, तो हमें समय से ताल मिलाकर चलना चाहिए।

बहाना बनाना – यह एक ऐसी बीमारी है, जिसके कारण हम अपनी असफलता को स्वयं आमन्त्रित कर लेते हैं। बहाने बनाते रहने से कभी कोई कार्य प्रारम्भ नहीं होता और यदि प्रारम्भ हो भी गया, तो बहाने बनाने के कारण धीरे-धीरे उसमें शिथिलता आने लगती है, इस प्रकार उस

कार्य में हमें सफलता नहीं मिलती। वस्तुत: हमें शुभ कार्यों को टालना नहीं चाहिए। कबीरदास जी बहाना बनानेवालों को कहते हैं कि जो कल करना है, उसे आज करो, जो आज करना है, उसे अभी करो, कुछ ही समय में प्रलय हो जाएगा, फिर तुम क्या कर पाओगे?

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करेगा कब।।

धैर्य का अभाव – हरेश नामक युवक अपने गाँव से शहर जा रहा था। वह मार्ग में एक स्थान पर विश्राम के लिए बैठा था। वहाँ एक व्यक्ति कुछ पत्ते तोड़ रहा था। हरेश ने उससे पूछा कि वह इनका क्या करेगा। तब उस व्यक्ति ने बताया कि यह औषधि है और इस औषधि के द्वारा १५ रोगों की चिकित्सा की जा सकती है। यदि वह सीखना चाहे, तो वह उसे सिखाएगा। वहाँ कुछ दिन रहकर हरेश कुछ औषधियों के विषय में जान गया। एक बार उस सिखानेवाले व्यक्ति ने हरेश से कहा कि प्रत्येक वृक्ष में औषधीय गुण होते हैं। इतना सुनते ही अब उसे लगने लगा कि उसे आयुर्वेद विद्या आ गई है। अब हरेश वहाँ से अपने गाँव वापस आ गया और गाँववालों से यह कहने लगा कि उसने आयुर्वेद सीख ली है। गाँववाले उसके पास जाने लगे और कुछ लोग स्वस्थ भी हुए। अब हरेश मन ही मन सोचने लगा कि यदि वह उस व्यक्ति के पास ही रहता, तो उसे बाकी विद्या सीखने में सारी उम्र लग जाती। अब वह स्वयं जंगल जाकर वृक्षों के पत्ते लाकर औषधि बनाने लगा। एक दिन उसके द्वारा निर्मित औषधि से कुछ लोगों की मृत्यु हो गई। तब गाँव के लोग उस पर क्रोधित हो गए और उसे भी वही औषधि खिलाया गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। यदि स्थिति का विश्लेषण करें, तो हरेश की मृत्यु का कारण वे पत्ते नहीं थे, जिसे उसे खिलाया गया था, बल्कि उसके धैर्य के अभाव के कारण ही उसकी मृत्यु हुई थी। क्योंकि धैर्य के अभाव के कारण उसने वह विद्या अच्छे ढंग से नहीं सीखी थी। इसी प्रकार हमारे जीवन में भी धैर्य के अभाव के कारण हमारी असफलता होती है। जब हम किसी कार्य को सीखने या पूर्ण करने का धैर्य खो बैठते हैं, तब हमारे मन में चंचलता आ जाती है। तत्पश्चात् हम अपने मन की पूरी शक्ति का प्रयोग नहीं कर पाते और असफल हो जाते हैं।

सरल मार्ग चुनना – सुविधाओं में रहकर कभी तपस्या नहीं होती। यदि हमें सफल बनना है, तो परिश्रम तो करना ही पड़ेगा। यदि गगनचुंबी इमारत बनानी हो, तो उसके लिए वैसे ही गहरे और मजबूत नींव की आवश्यकता होती है। जैसा हमारा लक्ष्य होगा उसके अनुसार हमें वैसा परिश्रम करना पड़ेगा और उसका मार्ग भी वैसा ही कठिन होगा।

कुछ विद्यार्थी ऐसे विषयों का चयन करते हैं, जिसे वे परीक्षा के एक दिन पहले पढ़कर उत्तीर्ण कर सकें। परन्तु इस प्रकार की पढ़ाई से उन्हें स्नातक की उपाधि तो मिल जाती है, पर वे बेरोजगार बैठे रहते हैं। तत्पश्चात् वे अपनी बेरोजगारी का कारण प्रशासन तथा भ्रष्टाचार के सर मढ़ते हैं। पर वास्तविकता यह होती है कि उन्होंने सरल मार्ग चुना था तथा परीक्षाओं के अनुरूप कठिन परिश्रम भी नहीं किया था। सरल मार्ग चयन करने के कारण उस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा अत्यधिक होती है, क्योंकि वहाँ लोगों की संख्या बहुत अधिक होती है। सरल मार्ग के द्वारा हम सफलता की ओर नहीं जा सकते। सफलता के लिए तो हमें संघर्ष और परिश्रम करना ही पड़ता है।

असफलता का भय – एक युवक और एक संन्यासी के बीच बातचीत कुछ इस प्रकार चल रही थी –

संन्यासी – तुम जीवन में क्या करना चाहते हो?

युवक – संन्यासी बनना चाहता हूँ।

संन्यासी – इसके लिए तो तुम्हें घर-द्वार छोड़कर ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करना होगा।

युवक – हाँ।

संन्यासी – तो तुम प्रयास क्यों नहीं करते?

युवक – मुझे भय है कि कहीं मैं असफल न हो जाऊँ।

कुछ लोगों के असफल होने का कारण उनका असफलता के भय से प्रयास न करना होता है। यदि हमने प्रयास ही नहीं किया तो हम असफल होंगे ही। पर यदि हमने प्रयास किया, तो सम्भवत: हम सफल हो सकते हैं। कभी-कभी कुछ लोग प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग नहीं लेते क्योंकि उन्हें डर होता है कि यदि वे उत्तीर्ण न हुए तो समाज में उनका सम्मान नहीं रहेगा। वे अपनी वास्तविक स्थिति को छिपाने के लिए प्रतिस्पर्धाओं और परीक्षाओं से दूर भागते रहते हैं। पर इस प्रकार के पलायन के द्वारा कभी भी सफलता नहीं मिल सकती।

व्यक्तित्व में कमी – स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'जब हमें असफलता मिलती है, तो हम दूसरों को कोसते हैं। ज्यों ही मुझे असफलता मिलती है, त्यों ही मैं कह उठता हूँ

कि अमुक-अमुक मेरी असफलता के कारण हैं। असफलता आने पर मनुष्य अपनी कमजोरी और अपने दोष को स्वीकार करना नहीं चाहता। प्रत्येक मनुष्य यह दिखलाने की कोशिश करता है कि वह निर्दोष है और सारा दोष वह किसी मनुष्य पर, किसी वस्तु पर और अन्ततः दुर्भाग्य पर मढ़ना चाहता है। जब घर का प्रमुख कर्ता असफल हो, तो उसे स्वयं से यह प्रश्न पूछना चाहिए कि कुछ लोग अपना घर किस प्रकार इतनी अच्छी तरह चला सकते हैं तथा दूसरे क्यों नहीं। तब तुम्हें पता चलेगा कि यह अन्तर उस मनुष्य के ही कारण है – उस मनुष्य के व्यक्तित्व के कारण ही यह अंतर पड़ता है।'[१]

सफलता के उपाय

अपने कार्य से प्रेम – वह कार्य जिससे हम प्रेम करते हैं, उसमें हमारा मन स्वतः ही लग जाता है। अतः उस कार्य में हमारी क्षमता अत्यधिक दिखाई देती है। जिस कार्य के प्रति हमारा प्रेम होता है, उस कार्य को करने में हमें कभी बोझ या भार का अनुभव नहीं होता। जिस व्यक्ति को संगीत में रुचि है, वह व्यक्ति पूरे दिन संगीत का अभ्यास कर सकता है, पर फिर भी उसे थकान नहीं लगती। वैज्ञानिक अपने अनुसंधान कार्य में कई-कई दिन व्यतीत कर देते हैं, यहाँ तक कि उन्हें अपनी दिनचर्या का भी भान नहीं रहता। पर इस कार्य में उन्हें आत्मसन्तुष्टि मिलती है, थकान नहीं। एक सिपाही अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि भी हँसते-हँसते दे देता है, क्योंकि उसे अपने राष्ट्र से प्रेम होता है और राष्ट्र की सुरक्षा का कार्य उसे प्राणों से भी प्रिय होता है। जिन विद्यार्थियों को जिस विषय में रुचि होती है, उसका अध्ययन वे स्वयं करने लगते हैं, बल्कि उन विषयों में वे कई बार नये आविष्कार भी कर लेते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि हमें अपने कार्य से प्रेम हो, तो हम सफलता की ओर अवश्य अग्रसर होंगे।

मन शान्त रखें – शान्त मन में सोचने-विचारने की क्षमता अधिक होती है। वह आनेवाली समस्याओं से भी जूझने के लिए प्रस्तुत होता है। वहीं अशान्त व्यक्ति सामान्य-सी असुविधाओं पर बेचैन हो जाता है और गलत निर्णय ले बैठता है। शान्त मन जीवन और जीविकोपार्जन; दोनों को संतुलित रखती है। शान्ति मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है और इसकी खोज ही उसका जीवन है। यदि वह शान्त है, तो वह अपने वास्तविक स्वरूप के अत्यन्त निकट है। कभी-कभी व्यक्ति धन के लिए इतना दौड़ता है कि वह मशीन की भाँति हो जाता है। जीवन के अन्त में उसका मन अत्यन्त चंचल हो जाता है और वह स्वयं को असफल मानने लगता है। मन के अविचलित होने पर वह बड़े-बड़े आघातों से भी वैसे ही निकल जाता है, जैसे समुद्र की हिलोरों से बड़े-बड़े जहाज निकल जाते हैं। यह कहना अत्यन्त सरल है कि मन को शान्त रखें, पर यह इतना आसान कार्य नहीं है, इसके लिए हमें प्रयास करना चाहिए। विवेक-विचार के द्वारा हमें जगत की समस्याओं का हल निकालना चाहिए और अपने संस्कारों को बदलने का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार हम अपने मन को शान्त रख सकते हैं।

दृढ़ता – जब माताएँ घर में सब्जियाँ बनाती हैं, तो कई बार उनकी उँगलियाँ चाकू से कट जाती हैं, पर इसके बाद भी वे सब्जियाँ बनाना नहीं छोड़ देतीं। जब बच्चा पहली बार चलना सीखता है, तो कई बार गिरता है, फिर भी वह चलने का प्रयास करता है और इसी प्रकार प्रयास करते-करते एक दिन वह चलना सीख जाता है। जीवन में भी हमारे साथ कुछ ऐसा ही होता है, हम अपने लक्ष्य को पाने के लिए अथक प्रयास करते हैं और लगभग सफलता के बहुत समीप आकर अपना धैर्य खो देते हैं और वह कार्य छोड़ देते हैं। पर किसी कार्य की सफलता उसकी दृढ़ता पर निर्भर करती है। यदि हम अपने कार्य, अपने लक्ष्य, अपने नियमों और अपने आदर्शों के प्रति दृढ़ रहें, तो हमारी सफलता निश्चित होगी। एक दृढ़ व्यक्ति असफल हो जाने पर भी उस कार्य को नहीं छोड़ता, वह पुनः प्रयास करता है और उसकी दृढ़ता एक दिन उसे सफल बनाती है।

अपने प्रति ईमानदारी – हम जीवन में किसी और को धोखा नहीं देते, बल्कि स्वयं को धोखा देते हैं। इससे हमें ही हानि होती है। लोग यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि वे महान हैं, पर वे भीतर से स्वार्थी होते हैं। कुछ लोग संसार में अपनी छवि अच्छा दिखाना चाहते हैं, पर वास्तव में वे वैसे नहीं होते। इस प्रकार की छवि से जीवन में वास्तविक कोई लाभ नहीं होता, बाद में उन्हें स्वयं पछताना पड़ता है, पर जो व्यक्ति अपने प्रति ईमानदार होता है, वह अचल शान्ति में निवास करता है। किसी विद्यालय में शिक्षक ने विद्यार्थियों को गृह-कार्य दिया। उनमें से लगभग ९० अपने गृह-कार्य करके जाते हैं, परन्तु १० अपना गृह-कार्य नहीं करते। कुछ विद्यार्थी अपना बचाव करने के लिए अपने किसी सहपाठी की नकल कर लेते हैं। इस प्रकार के गृह-कार्य के द्वारा वह अपना गृह-कार्य तो पूर्ण कर लेते हैं, परन्तु स्वयं

उन प्रश्नों के हल करने से जो ज्ञान उन्हें मिलता, उससे वंचित रह जाते हैं। उनका वर्तमान कार्य तो चल गया, पर भविष्य में यह बहुत बड़ी समस्या होकर सामने आएगी। अत: हम स्वयं के प्रति ईमानदार बनें। जो व्यक्ति स्वयं के प्रति ईमानदार होता है वही दक्षता प्राप्त कर पाता है, क्योंकि उसका ज्ञान उसके अनुभवों से ओतप्रोत होता है।

दूसरों के अनुभवों से सीखें – सफलता के पथ पर अग्रसर होने के लिए दूसरों के अनुभवों का सहारा लेना उस सीढ़ी की भाँति होता है, जो हमें शीघ्रता से वहाँ तक पहुँचा देती है। हम जिस पथ पर अग्रसर होना चाहते हैं, उस पथ के पथिकों का अनुभव हमें हमारे पथ में सहायता प्रदान करता है। जैसे हम किसी पहाड़ पर चढ़ना चाहते हैं, तो उस पहाड़ पर चढ़नेवालों के अनुभव को सुनकर हम यह जान सकते हैं कि उस पहाड़ पर चढ़ने के समय हमें क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए। उस पथ पर क्या-क्या असुविधाएँ होती हैं, जिनका हमें ध्यान रखना चाहिए आदि-आदि। सफलता या असफलता दोनों प्रकार के ही अनुभवों की हमें आवश्यकता होती है। सफलता के अनुभवों से हम यह जान सकते हैं कि उस व्यक्ति ने कैसे-कैसे प्रयास किए थे, जो सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं। वहीं हम असफलताओं के अनुभवों से यह जान सकते हैं कि हमें क्या-क्या नहीं करना चाहिए। अत: असफलता के अनुभवों की भी हमें अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

योजना का महत्त्व – अफजल खान बीजापुर की आदिलशाही का चतुर योद्धा था। वह हर तरह की रणनीति अपनाने में प्रसिद्ध था। आदिलशाह की माँ ने मराठों पर अधिकार करने के लिए अफजल खान को भेजा था। अफजल खान ने शिवाजी महाराज को प्रतापगढ़ के पास मिलने का संदेश भेजा तथा यह शर्त रखी कि मिलने के समय साथ में मात्र चार लोग होंगे। अफजल खान की विशाल सेना के साथ युद्ध करने का अर्थ असफलता को आलिंगन करना ही होता। शिवाजी अफजल खान की धोखेबाजी से भी अवगत थे। तब उन्होंने मिलने का मार्ग चुना। जब दोनों पक्ष आमने-सामने उपस्थित हुए, तब अफजल खान ने आलिंगन करने का प्रस्ताव रखा। शिवाजी जैसे ही गले मिलने लगे अफजल खान ने अपना छिपाया हुआ चाकू शिवाजी की पीठ में घोपा, पर शिवाजी ने वस्त्र के भीतर लोहे का कवच पहन रखा था। तब शिवाजी ने प्रत्युत्तर में पहले से ही उँगलियों में जो बाघनख पहन रखा था, उससे उन्होंने अफजल खान को चीर दिया और उसके भागने के प्रयास करने पर उसका वध कर दिया। यहाँ योजना तो दोनों ने बनाई, परन्तु अफजल खान ने केवल अपने षड्यंत्र के विषय में सोचा। वहीं शिवाजी महाराज ने मित्रता और धोखे खा जाने की सम्भावना इन दोनों को विचार करते हुए योजना बनाई।

योजना हमें हर सम्भव विकल्प पर सोचने की शक्ति देती है। योजना के माध्यम से हमारी शक्ति का अपव्यय नहीं होता तथा समय का सदुपयोग होता है। यदि हम योजना के अनुसार चलते हैं, तो हमारा आत्मविश्लेषण सहज हो जाता है, क्योंकि तब हम अपने लक्ष्य से कितने दूर हैं, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। वस्तुत: हमारी सफलता हमारी योजना पर निर्भर करती है।

आत्मविश्वास जगाएँ – एक दुर्बल व्यक्ति जब उसके सामने कोई विकल्प न हो और आत्मविश्वास ही उसका एक मात्र सहारा हो, तो विपदा के समय में वह व्यक्ति ऐसे कार्य कर जाता है, जो सम्भवत: किसी सबल व्यक्ति के द्वारा भी सम्भव नहीं होता। आत्मविश्वास भीतर की वह शक्ति है, जो बाकी शक्तियों को बल देती है। अत: हमें अपने भीतर के आत्मविश्वास को जगाना चाहिए। हमें प्रत्येक कार्य के प्रति सकारात्मक होना चाहिए कि हम यह कार्य कर सकेंगे और तब यह शक्ति जागृत हो उठेगी। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, 'असफलता तभी होती है, जब तुम अपने अन्त:स्थ अमोघ शक्ति को अभिव्यक्त करने की यथेष्ट चेष्टा नहीं करते। जिस क्षण व्यक्ति या राष्ट्र आत्मविश्वास खो देता है, तो उसी क्षण उसकी मृत्यु आ जाती है।'[२]

पद्धतियों का पालन करें – बोध और गुणित; दोनों मित्र थे। वे दोनों तैरना सीखना चाहते थे। इसलिए वे दोनों एक तैराक के पास गए और वह भी सीखाने के लिये तैयार हो गया। इसके बाद तैराक उन दोनों को तालाब के समीप स्थित एक वृक्ष पर ले गया और बोला कि तुम दोनों यहाँ से कूद पड़ो। पर वे दोनों कहने लगे कि वे तैरना नहीं जानते। यदि वे वृक्ष से कूदेंगे, तो तालाब की गहराई में जाकर डूब जाएँगे। पर तैराक नहीं माना और उसने कड़ाई से कहा कि यदि तुम लोग नहीं कूदोगे, तो मैं तुम लोगों को धकेल दूँगा। स्थिति देखकर बोध कूद गया और डूबने लगा। तब तैराक बोध को बचाकर बाहर लाया और उससे पूछा कि क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास है कि मैं तुम्हें डूबने नहीं दूँगा? यदि हाँ, तो मैं यह विद्या तुम्हें भी सिखा दूँगा। पर तुम्हें मेरी बताई हुई पद्धतियों का पालन करना होगा। बोध ने

सहमति दिखाई। इसके बाद तैराक ने गुणित को कूदने को कहा। पर वह वृक्ष से नीचे उतर गया और तैराक से कहने लगा कि आप मुझे कम गहराई में ही सिखाइए। बाद में मैं अधिक गहराई में जाऊँगा। इस प्रकार दोनों तैरना सीखने लगे। कुछ ही दिनों में बोध एक अच्छा तैराक बन गया। पर गुणित अब भी कमर तक के पानी में ही तैरना सीखता रहा, क्योंकि उसे जहाँ कठिनाई होती या डर लगता, वह उस तैराक की बात नहीं मानता था। यदि कोई यह कहे कि वह किताब पढ़कर तैरना सीख जाएगा, तो वह कभी नहीं सीख सकता। सुविधाओं में रहकर कोई सफल नहीं बन पाता इसके लिए तो कठिन परिश्रम करना ही पड़ता है। वास्तव में जब हमें कुछ सीखना हो अथवा कुछ कार्य करना हो, तो हमें उन समस्त पद्धतियों का अवलम्बन करना चाहिए, जो आवश्यक हों।

सकारात्मक हों – एक सकारात्मक व्यक्ति विपदाओं में भी सकारात्मक ढंग से कार्य करता है, वह अपना प्रयास नहीं छोड़ता और आगे बढ़ जाता है। वहीं दूसरा व्यक्ति नकारात्मक विचारों के कारण उस कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करता और इस कारण वह स्वत: ही असफल हो जाता है। वस्तुत: सफलता का रहस्य सकारात्मक प्रयासों पर ही निर्भर है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, 'हम क्यों न लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न करें ! असफलताओं से ही ज्ञान का उदय होता है। अनन्त काल हमारे सम्मुख है, फिर हम हताश क्यों हों! दीवार को देखो। क्या वह कभी मिथ्या भाषण करती है? पर उसकी उन्नति भी कभी नहीं होती, वह दीवार की दीवार ही रहती है। मनुष्य मिथ्या भाषण करता है, किन्तु उसमें देवता बनने की भी क्षमता है। इसलिए हमें सदैव क्रियाशील – प्रयत्नशील बने रहना चाहिए। कोई परवाह नहीं, यदि हम गलत रास्ते पर जा रहे हों, कुछ ना करने से तो अच्छा ही है।'[३] स्वामी विवेकानन्द जी के ये सकारात्मक विचार हमें प्रगति के पथ पर अग्रसर करते हैं। हमें आशा दिलाते हैं कि हम कितने भी विफल क्यों न हो जाएँ, अपने सकारात्मक प्रयासों के द्वारा हम प्रगति कर सकते हैं, हम सफल हो सकते हैं। ○○○ **(समाप्त)**

सन्दर्भ सूत्र – १. विवेकानन्द साहित्य ४/१७१, **२.** वही, ९/१९५, **३.** वही, ७/१८४.

प्रेरक लघुकथा

कैसे निबहें निबल जन जामें एकता नाहिं

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

एक बार कन्फ्यूशियस को भ्रमण करते समय निर्जन स्थान में एक पेड़ के नीचे एक साधु विश्राम करते दिखाई दिये। उन्होंने पूछा, ''साधुवर, आप इस निर्जन स्थान में क्या कर रहे हैं?'' साधु ने बताया, ''यहाँ का राजा बड़ा ही दुष्ट, अत्याचारी और दुरात्मा है। इससे मंत्री और राज-कर्मचारी अत्याचार और अन्याय कर रहे हैं। प्रजा सर्वथा दुखी है। ऐसे वातावरण में मैं शान्त कैसे रह सकता हूँ ! अत: यहाँ एकान्त में शान्ति प्राप्त कर रहा हूँ, जिससे मैं वंचित था।''

कन्फ्यूशियस ने कहा, ''क्या कुछ लोगों के भय से अन्य स्थानों से भागकर एकान्त में रहना आप उचित समझते हैं। क्या भलाई करके बुराई दूर नहीं की जा सकती? संकटों और कठिनाइयों का जीवन ही तो सच्चा जीवन है।'' साधु ने कहा, ''संकट भवसागर पार कराने में अक्षम हैं। निर्बल व्यक्ति दुर्जनों से जूझ नहीं सकता।''

''आपकी सोच गलत है।'' कन्फ्यूशियस ने कहा, ''एकान्त में सद्गुण पनप नहीं सकते। समाज में रहने से आपके सद्गुण लोगों के लिए प्रेरणादायी बनते हैं। आपके अवगुणों को दूर करने में सक्षम हैं। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि भीरू न बने और दुखों-संकटों और झंझटों का डटकर मुकाबला करे। समाज में रहकर एक-दूसरे को सहयोग देने से एकता का भाव जाग्रत होता है। एकता से विपन्नावस्था दूर होकर सुख की प्राप्ति होती है।''

अकेलेपन को एकान्त कहा जाता है। जहाँ कोलाहल न हो, उछल-कूद न हो, वह एकान्त स्थल होता है। एकान्त में रहकर सुख की अपेक्षा करना भ्रान्ति है। अनाचार, अत्याचार और आतंक के भय से एकान्तवास दुम दबाकर भागने के सदृश है। संत-साधुओं को चाहिए कि वे समाज में रहकर लोगों को एकत्र करें। उनमें स्वाभिमान जगाएँ। उन्हें एकत्र करें। उनका एकत्रीकरण ही एकता या ऐक्य है। एकता मनुष्य में आत्मबल बढ़ाती है। दृढ़ इच्छाशक्ति ही अन्याय-अत्याचार का विरोध कर सकती है। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (४१)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

निराशा के बीच आशा

प्रेमानन्द को पत्र लिखने के बाद मुझे मद्रास से रामकृष्णानन्द का एक पत्र मिला। उन्होंने लिखा था, ''तुम एक अकिंचन संन्यासी हो और हजारों लोगों के लिए अन्न की व्यवस्था कर पाना तुम्हारे वश की बात नहीं है; अत: तुम्हें मठ लौट आना चाहिए।'' स्वामी प्रेमानन्द ने भी उन्हें इसी भाव के दो-तीन पत्र लिखे। उसी समय दार्जिलिंग से स्वामीजी ने मेरा हालचाल पूछा और स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखकर किसी विशेष उद्देश्य से मुझे मठ में बुलाने को कहा। उन्होंने स्वयं भी मुझे मठ में लौट आने को लिखा।

बौद्ध धर्मग्रन्थ 'धम्मपद' के अनुवादक श्री चारुचन्द्र बसु उन दिनों 'महाबोधि सोसायटी' के सचिव थे। वे बड़े नियमित रूप से आलमबाजार मठ में आया-जाया करते थे। स्वामी प्रेमानन्द के मुख से मेरे अटल संकल्प की बात सुनकर चारु बाबू मुझे 'महाबोधि सोसायटी' द्वारा संग्रहित 'दुर्भिक्ष दातव्य भण्डार' से सहायता देने को राजी हुए। प्रेमानन्द ने पत्र लिखकर मुझे इसकी सूचना दी। यह सुखद समाचार मेरे लिये ऐसा था, मानो आकाश का चाँद मैंने अपने हाथों में पा लिया हो।

उसी समय स्वामीजी ने दार्जिलिंग से लौटकर मठ में आते ही मेरे विषय में पूछताछ की। स्वामी प्रेमानन्द ने महुला से भेजे हुए – अकाल-पीड़ितों के विस्तृत विवरण से युक्त – मेरे तीन पत्र उन्हें पढ़ने के लिए दिये। तीनों पत्रों को पढ़कर स्वामीजी इतने विचलित हुए कि उन्होंने तत्काल, मुझे अत्यन्त आशा एवं उत्साह से पूर्ण एक पत्र लिखा। इसके साथ ही उन्होंने दो सेवक और दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता हेतु अपनी ओर से कुछ प्रारम्भिक राशि भी भेज दी।

स्वामीजी की 'पत्रावली' के पाठकगण यह जानते हैं कि इस अकाल के दौरान सेवाकार्य करने हेतु तब उन्होंने कैसे आशा तथा उत्साहपूर्ण पत्र लिखकर मेरे भीतर शक्तिसंचार कर दिया था। उनका प्रत्येक पत्र बारम्बार पढ़कर मेरा हृदय नये बल और '**मन्त्रं वा साधयेयम्, शरीरं वा पातयेयम्**' – के भाव से परिपूर्ण हो उठता। अहा, उन दिनों मैं एक क्या ही अबाध कर्मस्रोत में डूबा रहता ! ऐसा लगता मानो हमारी इस साधना के फलस्वरूप शीघ्र ही एक अभूतपूर्व नवीन युग का उदय होगा।

सुरेन

स्वामीजी ने जिन दो सेवकों को मेरी सहायता करने हेतु भेजा था, उनमें से एक का नाम था – सुरेन्द्रनाथ बसु (बाद में सुरेश्वरानन्द)। उसके विषय में यहाँ कुछ लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा।

सुरेन होर-मिलर कम्पनी में एक क्लर्क था। मैं उन दिनों की बात लिख रहा हूँ, जब नारायण स्वामी नाम के एक विख्यात हठयोगी कलकत्ते के बाहर काँकुड़गाछी के एक उद्यान में निवास कर रहे थे। मैं भी एक बार जाकर उन्हें देख आया था। मति नाम के एक बंगाली ने उनके पास से हठयोग सीखा और उसे बहुत-से लोगों को सिखाया था। एटार्नी मोहिनी मोहन चट्टोपाध्याय के पिता ललित बाबू (Retd. Deputy Collector) भी उनके एक शागिर्द थे। एक दिन मैंने हठयोगी मति को हमारे गिरीश बाबू के पास देखा था। सुरेन उन्हीं का शागिर्द था। वह अपने पेट को घुमाकर नेति-धौति की क्रियाएँ भलीभाँति दिखा सकता था।

नारायण-योगी के विषय में यहाँ और भी कुछ बातें लिखना चाहूँगा। कलकत्ते के एक नामी व्यक्ति के पुत्र ने, नारायण-योगी को लाकर बीडन स्ट्रीट के मोड़ पर 'नव हुल्लोड़' का उत्सव किया था। जन्माष्टमी के दिन उसके घर में 'नव हुल्लोड़' खूब धूमधाम से मनाया जाता था। उसमें श्रीकृष्ण के जन्मलग्न के राशिचक्र का एक चित्र बड़ी निपुणता के साथ सुन्दर रूप से प्रदर्शित किया जाता था।

स्वामीजी को, सुरेन के विषय में यह सब बताकर मैंने उसे संन्यास देने का अनुरोध किया था। जब मैं आलमबाजार मठ से बाहर निकला, उस समय वह होर मिलर के घर में

नौकरी करता था। स्वामीजी ने उसे मेरे पास महुला में जाने को कहा। उसी के साथ नित्यानन्द भी आया।

दुर्भिक्ष-सेवाकार्य की शुरुआत

१८९७ ई. के बैशाख मास की संक्रान्ति के दिन वे लोग महुला में आये और इसके साथ ही स्वामीजी ने अपनी ओर से डेढ़ सौ रुपये भेजकर मुझे पत्र द्वारा दुर्भिक्ष-सेवाकार्य आरम्भ करने का निर्देश भी दिया था।

हम लोग एक बाजार में गये और बढ़ी हुई कीमत पर चावल खरीद कर ले आये। पहले दिन – १५ मई, १८९७ ई. को केवल अठारह दुर्भिक्ष-पीड़ितों को ही चावल दिया गया। बड़ों को डेढ़ पाव, बच्चों को एक पाव और शिशुओं को आधा पाव, मैंने इसी हिसाब से चावल देना शुरू किया।

इसी प्रकार पाँच-सात दिनों के भीतर गाँव-गाँव में पूछताछ करके बहुत-से निरन्न नर-नारियों को टिकट दे आया। इसी दौरान एक दिन 'जिला दातव्य अकाल-सहायता समिति' के सचिव (नित्यगोपाल मुखर्जी) हमारा कार्य देखने आये और बड़े सन्तुष्ट होकर लौटे। उनके जाने के कुछ दिनों बाद ही जिला के मजिस्ट्रेट तथा कलेक्टर लेविंग साहब (Mr. E.V. Levindge) ने एक दिन सुबह आकर मेरे साथ बातचीत करके देखा कि हम लोग किस प्रकार चावल का वितरण करते हैं। जो दुर्भिक्ष-पीड़ित लोग उपस्थित थे, उन्हें देखकर वे बोले – ऐसे ही लोगों को चावल दिया जाना चाहिये, न कि कार्यक्षम व्यक्तियों को; अन्यथा वे लोग demoralise (नैतिक दृष्टि से अध:पतित) हो जाएँगे।

इसके बाद साहब बोले, ''हम लोग आपके प्रति कृतज्ञ हैं। (सरकार की ओर से) किस तरह की सहायता मिलने से आप लोगों को सुविधा होगी, यह मुझे बताइयेगा।'' बड़े मार्ग से गाँव तक जाने का कोई रास्ता नहीं था। मैंने साहब से महुला तक जाने के लिये एक रास्ता बनवा देने का अनुरोध किया।

करीब दो महीने महाबोधि सोसायटी के दुर्भिक्ष-कोश से जो कुछ मिलता, उसी से कार्य चला था। बाहर के दान की बात कहें, तो यदि महाबोधि सोसायटी से यह समयोचित सहायता न मिलती, तो हमारे कार्य में बड़ी असुविधा होती। चारुबाबू उन दिनों मठ के बड़े अनुरागी थे। वे यदि महाबोधि सोसायटी के सेक्रेटरी न होते, तो यह सहायता न मिल पाती।

मैजिस्ट्रेट लेविंग साहब के आने के बाद मैंने बहरमपुर जाकर एक बार फिर नित्यगोपाल बाबू के साथ भेंट की। उनके कहने पर मैंने 'अकाल-राहत समिति' के अध्यक्ष जिला जज (मि. पैंटन) तथा उसके एक प्रमुख सदस्य वैकुण्ठनाथ सेन के साथ भेंट की। सदस्यों ने एक मत होकर, प्रारम्भ में कुछ दिन तीन रुपये प्रति मन और बाद में हमेशा दो रुपये प्रति मन की दर से हमें अपने गोदाम से चावल दिया। हम चावल खरीदने अन्यत्र कहीं नहीं जाते, क्योंकि इस व्यवस्था से हमें काफी सुविधा हो गयी थी।

सेवाकार्य का प्रसार

नित्यानन्द करीब एक महीना मेरे पास रहने के बाद यहाँ से चला गया। सुरेन ने निरन्तर मेरे सहकारी के रूप में कार्य किया था। प्रारम्भ में, दुर्भिक्ष का कार्य शुरू करते समय एक रसोइया रखकर हम लोगों के खाने-पीने की व्यवस्था करने का विचार था; परन्तु गाँव के कुछ ब्राह्मणों ने ऐसा कदापि नहीं करने दिया। वे बोले, ''हमीं लोग आपको खिलाएँगे।'' हम लोग चावल वितरण करने के बाद, एक-एक दिन एक-एक जन के यहाँ भोजन कर आते। उनमें से किसी-किसी ने हमें अनेक दिनों तक अत्यन्त श्रद्धापूर्वक खिलाया था।

अपराह्न तथा रात के समय मैं दूर-दूर के गाँवों में जाकर लोगों की अवस्था का निरीक्षण करता। किसी-किसी गाँव में पहुँचकर देखता कि रात के समय किसी के घर में रौशनी तक नहीं है; मानो सभी लोग भूतों के समान निवास कर रहे थे।

मैं महुला का 'दण्डी-ठाकुर' हूँ – यह सुनते ही छिन्न-मलिन वस्त्रों में लिपटे हुए नर-नारी आते और मुझे घेरकर खड़े हो जाते। उनकी वह दुरवस्था देखकर मुझे असीम कष्ट होता। वे लोग क्या खाते हैं, पूछने पर कहते, ''बाबा, हम लोग अरवी, घुइयाँ, पत्तियाँ आदि उबालकर खाते हैं।'' मैं उन्हें अगले दिन महुला आकर चावल ले जाने को कहता।

इस दुर्भिक्ष-सेवाकार्य के दिनों में स्वामी रामकृष्णानन्द मेरे पत्रों का अंग्रेजी में अनुवाद करके उन्हें हमारी पहली पत्रिका 'ब्रह्मवादिन्' में प्रकाशित कराते। उनके इस प्रयास के फलस्वरूप मद्रास अंचल से काफी धनराशि एकत्र हुई। १८९७ ई. की 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका देखकर ही यह समझा जा सकता है कि काफी दूर रहते हुए भी, उन्होंने हमारे इस सेवाव्रत के लिये कितना काम किया था।

इस प्रकार हमारे दुर्भिक्ष-कोश में बाहर से रुपये आने

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

प्रश्नोपनिषद् (१२)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

यस्तु पुनः आदित्य-उपलक्षित उत्तरायणः प्राणात्म-भावः विरजः शुद्धः न चन्द्र-ब्रह्मलोकवत्-रजस्वलः वृद्धि-क्षय-आदि-युक्तः असौ तेषाम्। केषाम्? इति उच्यते –

अब आदित्य द्वारा उपलक्षित जो उत्तरायण (मार्ग) है, प्राण (हिरण्यगर्भ) के साथ तादात्म्य-भाव जिसका स्वरूप है, जो निर्मल है और जो चन्द्र-ब्रह्मलोक के समान मलिन तथा वृद्धि-क्षय आदि से युक्त नहीं है, ऐसा लोक उन लोगों का है। किनका? यही बताते हैं –

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति।।१६।।

अन्वयार्थ – **येषु** जिन लोगों में **जिह्मम्** कुटिलता (छल-कपट), **अनृतम्** झूठ-असत्य **च** और **माया** मिथ्याचार-ढोंग **न** नहीं होता; **तेषाम्** उन्हीं लोगों के लिये **असौ** वह **विरजः** शुद्ध **ब्रह्मलोकः** सूर्यलोक या प्राणात्म-भाव **इति** होता है।

भावार्थ – उन्हीं लोगों को वह शुद्ध सूर्यलोक या प्राणात्म-भाव प्राप्य है, जिन लोगों में कुटिलता (छल-कपट), झूठ-असत्य और मिथ्याचार-ढोंग नहीं होता।

भाष्य – यथा गृहस्थानाम् अनेक-विरुद्ध संव्यवहार-प्रयोजनवत्-त्वात् जिह्मं कौटिल्यं वक्र-भावः अवश्यम्भावि तथा न येषु जिह्मम्। यथा च गृहस्थानां क्रीडा-नर्म-आदि-निमित्तम् अनृतम् अवर्जनीयं तथा न येषु तत्। तथा माया गृहस्थानाम् इव न येषु विद्यते।

भाष्यार्थ – गृहस्थों के लिये बहुत-से विरुद्ध आचरण करने की आवश्यकता होने के कारण, उनमें कुटिलता अर्थात् टेढ़ापन होना अवश्यम्भावी है, वैसी कुटिलता जिन लोगों में न हो, (यह आदित्य-मार्ग उन्हीं का है)। खेल, काम-संलाप आदि के निमित्त से गृहस्थों को झूठ बोलना जैसा अपरिहार्य हो जाता है, वैसा जिनमें न हो; और जिनमें गृहस्थों के समान 'माया' नहीं होती।

माया नाम बहिः अन्यथा-आत्मानं प्रकाश्य अन्यथा एव कार्यं करोति सा माया मिथ्याचार-रूपा। माया इति एवम् आदयः दोषाः येषु अधिकारिषु ब्रह्मचारि-वानप्रस्थ-भिक्षुषु निमित्त-अभावात् न विद्यन्ते, तत् साधन-अनुरूपेण एव तेषाम् असौ विरजः ब्रह्मलोकः इति एषा ज्ञानयुक्त-कर्मवतां गतिः। पूर्वोक्तः तु ब्रह्मलोकः केवल-कर्मिणां चन्द्र-लक्षणः इति।।

माया उस मिथ्या-आचरण को कहते हैं, जिसमें बाहर से स्वयं को भिन्न रूप में दिखाकर, वास्तव में अन्य प्रकार का आचरण किया जाता है। ये माया आदि (कुटिलता, झूठ) रूपी दोष – निमित्त का अभाव होने से – जिन ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी अधिकारियों में नहीं होते; उनके (सत्य, ब्रह्मचर्य आदि) साधन के अनुरूप, उन्हीं के लिये निर्मल ब्रह्मलोक है; इस प्रकार यही उपासनायुक्त कर्मियों की गति है। जबकि पूर्वोक्त चन्द्र-रूप ब्रह्मलोक केवल कर्मियों (उपासनारहित कर्मकाण्डियों) के लिए है।।१६।। **(क्रमशः)**

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

लगे। मठ में स्वामी ब्रह्मानन्द इस कार्य से सम्बन्धित पत्र आदि लिखते और रुपये मुहय्या कराते। शुद्धानन्द उनके लिये मुंशी का कार्य सम्पन्न करते।

इन्हीं दिनों चारुबाबू ने हमें 'महाबोधि सोसायटी' के नाम पर अपना दुर्भिक्ष-सेवाकार्य चलाने को कहा। स्वामी ब्रह्मानन्द ने इस पर आपत्ति की।

नाम को लेकर महाबोधि सोसायटी के साथ हमारा मतभेद हुआ। स्वामीजी उन दिनों अलमोड़ा में थे। इसके बारे में सुनकर उन्होंने मुझे लिखा, ''नाम किसे चाहिये? नाम रसातल में जाये ! हमें तो काम चाहिये।'' इस घटना के फलस्वरूप महाबोधि सोसायटी से रुपये लेना बन्द हो गया। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (१०३)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

सेवक ने एक व्यक्ति की बहुत प्रशंसा की।

महाराज – वह सब दृढ़ता वाली बुद्धि नहीं है। हृदय के भीतर आकर्षण का अनुभव नहीं होने पर कुछ नहीं होता।

महाराज के कमरे में जो कूलर लगाया गया है, वह खराब हो गया है। इसीलिए उन्होंने इसके बारे में अध्यक्ष महाराज से बताने को कहा। बाद में उन्होंने कहा – ''एक कागज पर लिखकर दो। लिख देने से उसकी धारणा हो सकती है। केवल कहने से हममें से बहुत कम लोगों को धारणा होती है। अक्षर मस्तिष्क पर आघात करते हैं।''

प्रश्न – आपको घड़ी कब मिली?

महाराज – अरे राम ! स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में रहते समय भिक्षा (भोजन) का घण्टा बजता था। समय का ठीक ज्ञान होने के लिए काशी में रामप्रसाद महाराज को बताया। उन्होंने एक घड़ी भेज दी।

रेजाक मियाँ एक आश्रमवासी के लिए जनेऊ दे गए।

महाराज – हमलोगों का जनेऊ तो दिखावा है, केवल रखने भर के लिये है। रेजाक के हाथ में जनेऊ देखकर मैं तो स्तब्ध रह गया, वह भी मुसलमान के हाथ में ! देखो, समाज कितना सहज और उदार हो गया है।

स्वामी अब्जजानन्द द्वारा लिखित ''स्वामीजीर पदप्रान्ते' पुस्तक पढ़कर एक विद्वान ने विचार व्यक्त किया कि इसमें प्रचुर सूचनाएँ हैं, किन्तु भाषा अच्छी नहीं है।

महाराज – हमलोग तो पुस्तक पढ़कर आनन्द से उछल पड़े ! फिर सुन्दर प्रस्तुति देखकर और अच्छा लगा। सबके उज्ज्वल पक्षों को अभिव्यक्त किया है। विशेषतः कनखल (हरिद्वार) के दो स्वामी जनों और शुद्धानन्द महाराज का संग किया हूँ, उन लोगों ने देखा है। अच्छी पुस्तक है, बाद में यह रामकृष्ण मिशन का एक इतिहास होगा। लोगों के काम आएगा। किन्तु जिसका भी लाभ हो, मैं और कितने दिन रहूँगा।

सेवक – मुझे भी मानो यह मन में रहता है, आपसे दूर जाकर भी।

महाराज – ठाकुर देखेंगे, थोड़ा-बहुत इधर-उधर होने पर भी बाद में ठीक हो जायेगा।

२८-०३-१९६४

महाराज प्रातःकाल पेराम्बुलेटर (बच्चा गाड़ी) पर भ्रमण कर रहे हैं। सेवक उसे ठेल रहे हैं।

महाराज – देखो, आज प्राकृतिक सौन्दर्य में कैसी सुन्दर हवा चल रही है ! लगता है, सचमुच ही जीवन उत्सवमय है। मैंने मास्टर महाशय से यह बात सीखी है। वे कहते थे, ''भोर होते ही तन-मन पुलकित हो जाता है कि अब मैं ठाकुर की बातों का चिन्तन कर सकूँगा।'' साधुओं का जीवन सचमुच ही उत्सवमय है। संन्यासी के आश्रम में नित्य ही उत्सव रहता है। कोई चिन्ता, भय नहीं, कोई दुर्भावना नहीं। इसके अलावा, यदि सचमुच ही सही पद्धति से चला जाय, तो शास्त्र में है – '**लघुत्वं आरोग्यं अलोलुपत्वम्**' इत्यादि का स्वाभाविक रूप से विकास होता है। साधुओं को इतना रोग-शोक नहीं होता और साधु की मृत्यु तो महान आनन्द की बात है, सीधा वैकुण्ठ !

मैं दिन भर लेटा रहता हूँ और मन में अनेक बातें आती हैं। अब सोचता हूँ कि राजयोग के सम्बन्ध में कुछ बातें लिखकर रख सकता था। वह सब मनुष्य की सम्भावनाओं के चरमोत्कर्ष की बात है – मनुष्य का तारक-ज्ञान सभी विषयों में '**सर्वथा विषयक्रम..**' तक हो सकता है। फिर ऐसी कुछ भी **उद्भट** प्रक्रिया नहीं है। गीता में है – '**प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्**'। जो तैयार है, उसके लिये यह कुछ भी कठिन नहीं है। वह जो 'क्षुरस्य धारा' आदि कहा गया है, ये सब बातें, जो तत्पर नहीं है, उसके लिये हैं। बिना जाने-समझे प्रयोगशाला (लैबोरेटरी) में प्रवेश करने पर एसिड से हाथ तो जलेगा ही। हाय ! हाय ! मनुष्य यदि यह

जानता कि उसके द्वारा कितना ज्ञान हो सकता है ! यह जो ब्रह्मचारी है, उसके समान बुद्धिमान नवयुवक यदि ६ महीने तक यह सब चर्चा करे, तो उसे इस सम्बन्ध में मोटे तौर पर धारणा हो जाएगी। किन्तु सुअवसर का अभाव है। इसके अलावा मन में इस प्रकार के रस को चखने की प्रवृत्ति के लिये तैयारी की भी आवश्यकता है। किन्तु असली बात है, सुअवसर नहीं मिलता। केलों के खेत की ओर देखकर –

महाराज – केलों के खेत की ओर देखकर दुख होता है।

प्रश्न – क्यों?

महाराज – छोटे केले के पौधों का विकास नहीं हो रहा है, जैसे गरीब घरों के बच्चों के शरीर की वृद्धि नहीं होती, वैसे ही।

पूजनीय नि... महाराज कल सन्ध्या को कमरे में झाँककर महाराज को देखकर गए थे। जब कुछ दिनों तक महाराज से उनकी भेंट नहीं होती है, तो वे बीच-बीच में इसी प्रकार करते हैं।

महाराज – कैसा उत्तम है देखो ! ठाकुर से सम्बन्धित सबके प्रति अपनत्व का बोध होना, सब एक परिवार के लोग हैं। किन्तु संसार-पथ पर चलना नहीं जानने के कारण आलसी बनकर पड़े रहने से जीवन प्रस्फुटित नहीं हो पाता, लोक-व्यवहार में दक्षता नहीं आती।

जो नवयुवक महाराज का कार्य करता है, उसके सम्बन्ध में –

महाराज – उस नवयुवक को तैयार कर लेने पर बहुत काम आयेगा, वह बहुत बुद्धिमान है। किन्तु उसे धीरे-धीरे सिखाना होगा, हम लोगों के काम में आवश्यकता है कि नहीं, यह देखना होगा। वह सु... से भी किसी-किसी विषय में बुद्धिमान है। देखो, सु... तो अभी से इसी प्रकार का है। किन्तु वह कहता है – जब वह पाठशाला में पढ़ता था, तो वसन्त के समय उसके मन में अत्यन्त उल्लास होता था ! रास्ते में चलते-फिरते। वास्तविक वसन्त में मन में मानो पुलक भाव का सिहरन होता है, मन को उदास कर देता है।

दिल्ली के कृ... नाश्ता करके आए, वे भ्रमण कर रहे हैं।

कृ - महाराज, आज रात में गया चला जाऊँगा।

महाराज – गया क्यों?

कृ – वह जगह देखने। पिताजी का निधन हो चुका है, उनका पिण्डदान करना है।

महाराज – वहाँ तो ठाकुर का मूल स्रोत है।

कृ – हाँ, महाराज।

महाराज – अच्छा तो है। मेरा एक पिण्ड भी दे देना। देखो न, यह शरीर कैसे भी नहीं जा रहा है।

कृ – आपलोग हैं, तभी तो हम लोग श्रीमाँ के बच्चों के साथ बातें कर पा रहे हैं।

महाराज – हमलोग जाकर भी हैं। श्रीमाँ ने कहा है, हमलोगों के लिये रामकृष्ण-लोक है। वहाँ जाने पर ठाकुर के दल के सभी लोगों से भेंट होगी। क्या तुमने हमलोगों के कमरे में समूह का चित्र देखा है?

(सेवक के प्रति) – कैसा बांगला सीखा है, देखते हो, अच्छा सीखा है। तुमने तो अंग्रेजी, बांगला, हिन्दी तीनों पर ही अधिकार कर लिया है। अब संस्कृत सीखो।

– तभी ठीक-ठीक मिशनरी (प्रचारक) बनोगे।

यह नवयुवक बिल्कुल ही ठीक है, उच्च कोटि का। बात-चीत में, चाल-चलन में कोई त्रुटि नहीं है। इसके अतिरिक्त जो और कुछ है, वह चला जाएगा। ठाकुर को अपना समझकर ग्रहण कर लिया है।

ठाकुर के कहने पर एक दिन मास्टर महाशय ने हावड़ा स्टेशन जाकर पुरी से आए हुए एक उड़िया या उत्तर भारतीय व्यक्ति के साथ प्रेमपूर्वक बातें करते हुए हावड़ा ब्रिज के बीच में एक जगह पर उससे पुरी के महाप्रसाद की याचना की। उसने पोटली खोलकर महाप्रसाद निकाला। उन्होंने घुटनों के बल बैठकर महाप्रसाद ग्रहण किया।

दोपहर में हरिप्रेम महाराज (स्वामी हरिप्रेमानन्द) और वरदा महाराज (स्वामी ईशानानन्द) भेंट करके गए।

महाराज – हरिप्रेम महाराज, वरदा महाराज आदि राधू की सेवा करते थे। राधू अस्त-व्यस्त होकर पड़ी रहती। श्रीमाँ कहती थीं, वे सब (वरदा महाराज) आदि मेरी पुत्रियाँ हैं। श्रीमाँ ही तो सब हैं, जो इच्छा, कर सकती थीं। राजयोग का सब कुछ उनके नियन्त्रण में था। मैंने सिलहट जाते समय माँ को प्रणाम किया। श्रीमाँ ने मिश्री को जिह्वा से स्पर्श कर प्रसाद बनाकर दिया।

मैंने कुछ नहीं कहा – यदि ... (महाराज और कुछ बोल नहीं सके। २-३ मिनट चुपचाप बैठे रहे। कण्ठ का स्वर अवरुद्ध हो गया।) **(क्रमशः)**

जीवन में सच्ची सफलता और उसका रहस्य

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

आध्यात्मिक जीवन में मन-मुख एक होना चाहिए। अभी तक हमें जो मिला, उससे संतुष्ट रहना चाहिए। संसार में रहकर यदि भगवान को पाने की ही इच्छा हो, तो सोचना कि तुम्हारी सोच सही है। इसके लिये अन्य विचारों को हटाने की दृढ़ इच्छा रखनी चाहिए। प्रभु अनन्त हैं। उनके नाम भी अनन्त हैं। उनकी कथाएँ भी अनन्त हैं। अत: उनका चिन्तन-मनन करो। पूर्णता की अनुभूति होने से जगत व्यवहार में 'हाय-हाय' नहीं रहेगा। हम जीवन में शान्ति से रहेंगे। हमारा मन विचलित नहीं होगा। इसकी पूर्णता की अनुभूति के लिए भगवान का नाम-जप और उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। भगवान भाव-ग्रहण करते हैं और वह भाव सत्संग से मिलता है, सद्ग्रंथ पढ़ने से मिलता है। हमें ठाकुर, श्रीमाँ, स्वामीजी के उपदेशों को पढ़ना चाहिए, हमें वैराग्य का आश्रय लेना चाहिए। वैराग्य उदासीन वृत्ति का परिणाम है। सांसारिक विषयों से उदासीनता होनी चाहिए। उदासीन वृत्ति से यह लाभ होगा कि हमारा मन बाहरी सब चीजों में नहीं अटकेगा। हमारे मन को बिखरने की जो प्रक्रिया है, उससे सावधान रहना चाहिए।

हमें उपयोगिता की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए, विलासिता की ओर नहीं। गृहस्थ हो या संन्यासी हो, उसे जीवन में आवश्यकतानुसार ही वस्तुओं को ग्रहण करना चाहिए, नहीं तो विलासिता आ जाती है और वह जीवन को नष्ट कर देती है। अत: जो साधक-साधिकाएँ हैं, उनका जीवन आवश्यकता के ऊपर आधारित होना चाहिए, विलासिता के ऊपर नहीं। मनुष्य को माया अपना ग्रास बनाना चाहती है, वह सताती रहती है, उससे बचना चाहिए। कर्मो का झमेला जब तक शरीर है, तब तक रहेगा ही।

जीवन की बहुत बड़ी याद रखने वाली बात है कि सबको भगवान ने २४ घंटे का समय दिया है। जो विवेकी होता है, वह जीवन का उद्धार करने में लग जाता है। संसार में अच्छी लगनेवाली, अच्छी दिखनेवाली सब चीजें मनुष्य को बंधन में डाल देती हैं। मनुष्य-शरीर भजन करने के लिए मिला है, भोग करने के लिए नहीं। संसार के सभी कर्तव्य कर्म करो, पर उसके साथ भगवान का भजन भी करते रहो। इसके लिए आदत बनानी पड़ेगी। भजन करने का अभ्यास करना होगा।

यह संसार बहुत विचित्र है ! पता नहीं, कब, कैसी परिस्थिति आ जाए ! परन्तु कैसी भी परिस्थिति तुम्हारे सामने आये, तुम घबड़ाना मत। क्योंकि हमेशा यह विश्वास करना कि ईश्वर तुम्हारे साथ हैं और सदा तुम्हारा कल्याण ही कर रहे हैं। यदि जीवन में सत्य के मार्ग पर नहीं रहोगे, सच्चाई से काम नहीं करोगे, तो तुम्हें बाद में बहुत भुगतना पड़ेगा। मन में बहुत अशान्ति आयेगी। अन्तिम दिनों में न कुछ खा सकोगे, न कुछ पी सकोगे, बहुत कष्ट होगा। जीवन नरकमय हो जाता है। सत्य के बिना ईश्वर मिलना दूर की बात है। अत: संसार में छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े काम में सच्चाई से चलना ही अच्छा है। महापुरुषों ने कहा है कि महालक्ष्मी की पूजा करो, उनकी अवहेलना मत करो। लक्ष्मी का कभी अपमान नहीं करना चाहिए। अपने जीवन के श्रम से अर्जित धन को अच्छे काम में ही लगाना चाहिए। धन का सदुपयोग करने से लक्ष्मीजी भी खुश रहती हैं। जब लक्ष्मीजी खुश रहेगीं, तो वे अनन्त रूप में आपको मिलेगीं। गलत काम करेंगे, तो वे चली जायेंगी। जीवन के हर क्षेत्र में सच्चाई का आधार लेना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है – सत्यमेव जयते – सत्य की ही विजय होती है। यदि आप बिना परिश्रम के अनैतिक रूप से ५० लाख भी कमायेंगे, तो उससे आपके बच्चे बहुत दुखी रहेंगे। आप गलत काम करके उन्हें दुखी बना रहे हैं। यदि गलत कार्यों से बचना हो, तो माँ लक्ष्मी का सन्मान करो, गलत उपयोग कर उनको दूषित न करो। बहुत-से गलत धारणाओं से बचना चाहिए। धन-सम्पत्ति को हमारे शास्त्रों में माँ लक्ष्मी का रूप कहा गया है, तो उसका कभी भी दुरुपयोग नहीं करना है। माँ लक्ष्मी बहुत पवित्र हैं। उनको अपवित्र मत करो। धन को

शेष भाग पृष्ठ २३८ पर

गीतातत्त्व-चिन्तन (१७)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

ईश्वर को सर्वस्व समर्पण से आत्मविस्तार

शशधर पण्डित श्रीरामकृष्ण के जीवन में आते हैं। वे बड़े भारी पण्डित थे। उनका बड़ा प्रभाव था, बड़ा नाम था। वे किसी राजा के राजपण्डित थे, राजपुरोहित थे। वे श्रीरामकृष्ण के पास आते हैं। ठाकुर को गले का रोग हो गया था, वे काशीपुर के बगीचे में थे। शशधर पण्डित आ कर उन्हें प्रणाम करते हैं। वे कहते हैं – महाराज ! आप जगन्माता के साथ इतने युक्त रहते हैं, जगन्माता आपकी बातें सुना करती हैं। मैं तो आपके जीवन को बहुत दिनों से देख रहा हूँ। यह जो रोग है, आप इस रोग को ठीक करने के लिए जगन्माता के पास क्यों नहीं जाते? आखिर इसमें आपका तो कोई स्वार्थ नहीं है। कितने भक्त आपके पास आपके दो शब्द सुनने के लिए आते हैं। आप रुग्ण हैं, इसलिये भक्तों की अभिलाषा पूरी नहीं हो पाती। रोग के कारण आप बोल नहीं पाते। अत: आप जगन्माता से प्रार्थना क्यों नहीं करते, ताकि वे आपके इस रोग को दूर कर दें। जगन्माता अवश्य आपकी बात सुनेंगी। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – पण्डित ! तुम इतने बड़े पण्डित हो करके ऐसा कहते हो! जिसको थूका है, उसी को मैं फिर से चाट लूँ, ऐसा कैसे? मैंने अपना सारा मन जगन्माता के चरणों में दे दिया है, यह मन अब मेरा नहीं रहा, यह मन अब जगन्माता का हो गया है। अब तुम कहते हो कि मैं इस मन को फिर से माँग लूँ। जब मैं जगन्माता से प्रार्थना करूँगा, तब मन को अपना बना लेना होगा और कहना पड़ेगा कि माँ तू मेरे गले के रोग को ठीक कर दे, क्योंकि बहुत-से लोग मेरे पास आते हैं, तेरे भक्त आते हैं, तेरा नाम मेरे मुँह से सुनना चाहते हैं। मैं इसमें समर्थ होऊँ, भक्तों की इच्छा पूरी कर सकूँ, इसलिए माँ तू कृपा कर, मेरे रोग को ठीक कर दे। अरे ! जिस मन को मैंने एक बार माँ को दे दिया, उसको मैं क्या फिर से वापस माँग सकता हूँ माँ से? शशधर पण्डित निरुत्तर हो गये, वे भला क्या उत्तर देते? श्रीरामकृष्ण की स्थिति कितनी ऊँची है ! कितना सूक्ष्म चिंतन, कितना सूक्ष्म विचार है! जिस मन को मैंने एक बार माँ के चरणों में समर्पित कर दिया, अब क्या उसी मन को मैं माँगूँ?

माँ से मुझे माँगना पड़ेगा, यह नहीं हो सकता। नरेन्द्र ने एक दिन कहा – महाराज देखिए ! आप खा नहीं पाते, जल की एक बूँद आपके गले के नीचे नहीं उतरती, आप तनिक-सा भोजन भी नहीं कर पाते। इतने भक्त यहाँ पर बैठे हैं, हमको कितना दुख होता है आपके कष्ट को देख करके। आप माँ से कहिए न ! भले ही आप अपने लिए नहीं कहिएगा, हमलोगों के लिए कहिएगा – माँ भक्तों के लिए कम-से-कम तू ऐसा तो कर दे कि थोड़ा-सा मैं कुछ खा लूँ। श्रीरामकृष्ण ने पहले जो उत्तर शशधर पण्डित को दिया था, वही उत्तर देते हैं, पर नरेन्द्र ने जब बहुत जोर दिया, तो कहते हैं – ठीक है रे! तू जब इतना कहता है, तो मैं माँ से कहूँगा ! दूसरे दिन नरेन्द्र पूछते हैं – महाराज! आपने क्या माँ से कह दिया? क्या उत्तर दिया माँ ने? श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया – मैंने माँ से कहा, देख माँ ! नरेन्द्र कह रहा था कि मैं कुछ खा नहीं पाता हूँ, पी नहीं पाता हूँ, इससे भक्तों को बड़ा कष्ट होता है। मेरे इस कष्ट

से वे अत्यन्त व्यथित हो जाते हैं। तो नरेन्द्र कहता है माँ कि मैं तुझसे कहूँ कि मेरे गले को तू ठीक कर दे, ताकि मैं कुछ खा और पी सकूँ। तो तू जानता है इसका उत्तर माँ ने क्या दिया? क्या दिया महाराज? तुम लोगों की ओर दिखाते हुए माँ ने मुझसे कहा – इतने सारे ये जो बैठे हैं, क्या तू इनके मुँह से नहीं खाता कि तुझे खाने के लिए अपना एक अलग मुँह चाहिए? मैं क्या करता रे? फिर मैं माँ से कुछ कह ही नहीं सका। नरेन्द्र क्या कहते ! श्रीरामकृष्ण का कितना अद्‌भुत ! गूढ़ वेदान्त तत्त्व भरा हुआ सहज उत्तर था। वे सरल वाणी से गूढ़ तत्त्व को भी कितना स्पष्ट कर दिया करते थे। वेदान्त का इससे उच्चतर भाव भला क्या हो सकता है? जहाँ मनुष्य यह अनुभव करता है कि मैं इन समस्त मुखों से खाता हूँ। **सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् –** वह पुरुष सहस्र शीर्षवाला है, उसकी हजार आँखें हैं, उसके हजार मुख हैं, उसके हजार पैर हैं। इस भाव की प्रतीति श्रीरामकृष्ण के जीवन द्वारा तब होती है, जब वे गले के रोग से व्यथित हैं, पीड़ित हैं। बाहरी दृष्टि से देखने से लगता है कि श्रीरामकृष्ण देव को कितनी तीव्र पीड़ा हो रही है, पर कितना ऊँचा वेदान्त का भाव है। मैं सभी मुखों से खाता हूँ, माँ मुझसे कहती है कि सभी मुखों से खा करके भी तू कैसे कहता है कि तुझे खाने के लिए अपना मुख चाहिए। यह समर्पण का भाव बहुत ऊँचा भाव है, यह हमारे लिए आदर्श है। इस आलोक के आदर्श में हम धीरे-धीरे उधर जाने की कोशिश करते हैं। मालूम नहीं कितने हजार पावर का वह बल्ब है, जो आलोकित कर रहा है, जिसके प्रकाश को हम दूर से देखते हैं। हम उसके पास जाने की कोशिश करते हैं।

अगले श्लोक में भगवान अर्जुन से कहते हैं –

ईश्वर पर पक्षपात का दोष नहीं

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।२९।।

अहम् (मैं) सर्वभूतेषु (सभी भूतों में) समः (समान हूँ) न मे द्वेष्यः (न मेरा कोई अप्रिय है) न प्रियः अस्ति (न प्रिय है) तु ये (परन्तु जो) माम् भक्त्या भजन्ति (मेरी भक्ति करते हैं) ते मयि (वे मुझमें हैं) च अहम् (और मैं) अपि तेषु (भी उनमें हूँ)।

– ''मैं सब भूतों में समान हूँ, न मेरा कोई अप्रिय है, न प्रिय है। परन्तु जो मेरी भक्ति करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूँ।''

अर्जुन ! समोऽहं सर्वभूतेषु – मैं सभी भूतों के लिए समान हूँ। एक प्रश्न उठता है, जब भगवान ने ऐसा कहा कि जिस समय कर्मों के फल को तू मुझे अर्पित करेगा, तो मुझे पा लेगा। तो किसी के मन में शंका उठी, उसने कहा – भगवान आप तो बड़े पक्षपाती हैं, जो समर्पण करेगा, उसको कहते हैं कि तू मुझे पा लेगा पर कई बार तो आप कह चुके हैं कि मैं समान भाव से सबके भीतर में विद्यमान हूँ। यह जो आपकी सर्वव्यापकता है, क्या वह आपकी इस बात से खण्डित नहीं होती? आप तो कहते हैं, मैं सबके भीतर में समान भाव से भरा हूँ और इधर कहते हैं कि जो फल मुझे अर्पित करता है, वह मुझे पाता है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि जो इस प्रकार आपको फल अर्पित करते हुए कार्य नहीं करते, वे आपको पाते नहीं, तो क्या इससे आप पर पक्षपात का दोष नहीं लगता? भगवान कहते हैं, मुझ पर पक्षपात का दोष नहीं लगता अर्जुन ! क्यों? क्योंकि तूने जो कहा कि मैंने कहा था – 'समोऽहं सर्वभूतेषु' मैं सब प्राणियों के लिए समान हूँ, किसी के लिए पक्षपात नहीं करता। बिलकुल ठीक बात है। न मे द्वेष्योऽस्ति न मे प्रियः – मैं किसी से द्वेष नहीं करता हूँ, न मैं किसी से प्रेम करता हूँ, पर तुम जानते हो अर्जुन – ये भजन्ति तु माम् भक्त्या – जो भक्ति से मेरा भजन करते हैं, मुझको चाहते हैं, मयि ते तेषु चाप्यहम् – वे मुझमें हैं और मैं उनमें विशेष रूप से प्रकट हूँ। अग्नि है, अग्नि हमें ताप देती है। अग्नि हमें ताप देती है, इसका अर्थ यह नहीं कि हम बहुत दूर बैठ जाएँ और कहते रहें कि अग्नि तुम तो मुझे ताप नहीं दे रही हो, तुम किसी को ताप देती हो, किसी को नहीं देती हो। तुम तो पक्षपात करती हो। अग्नि कहती है, जहाँ तक ताप का मेरा घेरा है, भाई ! तुम आ करके बैठ जाओ, तुम्हें भी ताप लगेगा। जो मेरे नजदीक आता है, उसको ताप लगता है। जैसे लोहे के कण यदि चुम्बक को शिकायत करने लगें कि वाह जी चुम्बक ! तुम बहुत पक्षपात करते हो ! तुम बाकी कणों को तो खींचते हो, हमने ऐसा कौन-सा दोष किया कि तुम हमको खींचते नहीं? चुम्बक कहेगा – भई! पक्षपात का दोष मुझ पर क्यों लगाते हो? अजी, मैं तो खींच ही रहा हूँ, पर तुमने जो अपने ऊपर मिट्टी लगा ली है, उसके कारण मेरा खिंचाव तुम्हें मालूम नहीं पड़ता।

तुम अपनी मिट्टी जरा धो लो, देखोगे कि मेरा खिंचाव तो पहले से ही विद्यमान है। जिस समय लोहे के वे कण अपने में लगी मिट्टी को धो लेते हैं, वे देखते हैं कि खिंचाव तो पहले से ही था। उन्हें उसका अनुभव नहीं होता था, क्योंकि मिट्टी उन्होंने अपने ऊपर पोत ली थी।

ठीक उसी प्रकार ईश्वर हमें खींच रहा है। उस खिंचाव का हम अनुभव नहीं कर पा रहे हैं। ईश्वर कहते हैं – तुम मुझ पर पक्षपात का दोष क्यों देते हो, मैं तो समान रूप से सभी भूतों के लिए हूँ, मेरा किसी से द्वेष नहीं हैं। मैं किसी पर द्वेष नहीं करता, किसी को प्यार नहीं करता। जो व्यक्ति मुझे प्यार करता है, जो मेरे पास आता है, जो मेरा भक्त है, उसे ऐसा लगता है कि भगवान भी मुझे प्यार करते हैं। तब वह जो आवरण है, वह कट जाता है। वह जो मिट्टी है, वह धुल जाती है। वह जो घेरा था, उस घेरे के अन्दर हम आ जाते हैं। यही भगवान कहते हैं – अर्जुन ! मुझे पक्षपात का दोष नहीं देना, कोई अगर मेरी कृपा नहीं चाहे, तो मैं क्या करूँ? गंगा के वक्ष पर से हवा तो बह रही है। यह हवा सभी नौकाओं पर समान रूप से लगती है। पर जो नौकावाला अपनी पाल तान देता है, उसे ऐसा लगता है कि हवा खूब जोर से बह रही है। उसे लगता है कि उसकी गति तेज हो गई। अब नाववाला अगर पाल ही न ताने, तो इसके लिए हवा को तो दोष नहीं दे सकते कि वाह री हवा ! तूने १५ नम्बर की नौका को तो खूब तेजी से चला दिया और यह जो १३ नम्बर की नौका है, वह तो चल ही नहीं रही। हवा कहती है – अरे मेरा क्या दोष? भगवान कहते हैं अर्जुन ! मुझपर पक्षपात का दोष नहीं देना चाहिए।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।३०।।

चेत् (यदि कोई) सुदुराचारः (अतिशय दुराचारी) अपि (भी) अनन्यभाक् (अनन्यभाव से) माम् भजते (मुझको भजता है) सः साधु एव मन्तव्यः (तो वह साधु ही मानने योग्य है) हि (क्योंकि) सः सम्यक् (वह यथार्थ) व्यवसितः (निश्चयवाला है)।

''यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मुझको भजता है, तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।''

इसका अर्थ है कि सुदुराचारी – खूब दुराचारी से भी अधिक दुराचारी, जिस समय मेरी अनन्य शरण में आता है, ऐसी भावना से जब मेरे पास आता है कि तुम्हें छोड़कर अब मेरी दूसरी गति नहीं है, तो साधुरेव स मन्तव्यः – उसे साधु के समान ही समझना चाहिए। सम्यग्व्यवसितो हि सः, क्योंकि अब उसकी बुद्धि ठीक-ठीक व्यवस्थित हो गई है। इसलिए उसको साधु के समान मानना चाहिए। अगले श्लोक में भगवान कहते हैं –

भक्त कभी नष्ट नहीं होता

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।३१।।

कौन्तेय (हे अर्जुन!) क्षिप्रम् (वह शीघ्र ही) भवति धर्मात्मा (धर्मात्मा हो जाता है) शश्वत् (शाश्वत) शान्तिम् निगच्छति (शान्ति को प्राप्त करता है) प्रति जानीहि (निश्चयपूर्वक जान) मे भक्तः (कि मेरा भक्त) न प्रणश्यति (नष्ट नहीं होता)।

– ''हे अर्जुन ! वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है, (तू) निश्चयपूर्वक जान कि मेरा भक्त (कभी) नष्ट नहीं होता।'

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा – वह जल्दी ही धर्मात्मा हो जाता है। शश्वच्छान्तिं निगच्छति – और उस शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर लेता है, जिसको पाने के लिए मनुष्य जीवन भर प्रयास कर रहा है। वह सोचता है कि इन्द्रियों के माध्यम से मुझे शान्ति मिलेगी, नहीं मिलती, पुत्र-परिवार के माध्यम से मिलेगी, नहीं मिलती, सत्ता-यश के माध्यम से मिलेगी, नहीं मिलती। जिस शान्ति की खोज जब से वह पैदा हुआ, तब से कर रहा है, उस शाश्वत शान्ति को पा लेता है। और क्षिप्रं भवति धर्मात्मा – वह शीघ्र से धर्मात्मा हो जाता है। कौन्तेय प्रति जानीहि – हे कौन्तेय ! तू बिलकुल जान ले, तू दृढ़निश्चय कर ले, मेरी यह प्रतिज्ञा सुन ले। भगवान अर्जुन को माध्यम बना करके संसार के समक्ष प्रतिज्ञा करते हैं। क्या प्रतिज्ञा करते हैं? न मे भक्तः प्रणश्यति – मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता, मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता। इसका तात्पर्य यह है कि भक्त कभी गिरता नहीं। वह ऊपर ही उठता है, जब तक भगवान के पास नहीं आ जाता, तब तक उसके कदम लड़खड़ाते नहीं, वह आ ही जाता है। जिसने मुझे एक बार पकड़ लिया, तब वह नहीं गिरता अर्जुन ! पकड़ना कैसे चाहिए, यह भगवान ने पहले

शेष भाग पृष्ठ २३८ पर

साधुओं के पावन प्रसंग (२९)

स्वामी निर्वाणानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१९६० ई. में जब मैं संघ में सम्मिलित हुआ, उस समय स्वामी निर्वाणानन्द जी (१८९०-१९८४) (सूर्य महाराज) बेलूड़ मठ के व्यवस्थापक थे। मैं मठ में जाने पर उनको प्रणाम करता। १९६३ ई. में उनसे घनिष्ठभाव से मिलने का संयोग हुआ। वे स्वामी ब्रह्मानन्द जी के शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में एक एल्बम प्रकाशित करने जा रहे थे। क्रिस्टोफर ईश्वरवूड ने उसकी भूमिका लिखी थी। मैं उस समय अद्वैत आश्रम के फोटो और फॉरेन विभाग में कार्य करता था। सूर्य महाराज के आदेशानुसार, राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) का सब चित्र प्रिंट करके मैं उनके पास ले गया। वे राजा महाराज के सेवक थे और महाराज के साथ घूमने गये थे, ये फोटो कहाँ और किस वर्ष में लिया गया था, उसे वे पहचानते थे।

स्वामी निर्वाणानन्द जी महाराज

१९६० ई. में सिकराकुलीन ग्राम में राजा महाराज का मन्दिर-निर्माण और उसकी प्रतिष्ठा हुई। सूर्य महाराज के प्रयास से एक विराट उत्सव का आयोजन हुआ और स्वामी शंकरानन्द जी महाराज ने मन्दिर में श्रीठाकुर के चित्र की स्थापना की। उस दिन मैं वहीं पर था।

१९६४-६५ ई. में जब हमलोग ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में थे, तब रात्रि में ठाकुर-भोग जाने के लिए घण्टा बजने पर हमलोग उनके कमरे में जाया करते थे और भोग समाप्त होने तक वे ठाकुर के पार्षदों के सम्बन्ध में हमें बताया करते थे। वे गौरवमय दिन थे। ये सब वरिष्ठ संन्यासी ठाकुर के पार्षदों के साथ रहे हैं और उनके दिव्य-जीवन को देखा है। उनलोगों से इनलोगों ने सुना है कि ठाकुर उन सभी को किस प्रकार शिक्षा दिया करते थे। सब बातें नहीं बतायी जा सकतीं। यह मौखिक-परम्परा अभी हमलोग भूल गये हैं। इसीलिए मैंने उद्बोधन से प्रकाशित स्मृति-साहित्यमाला के माध्यम से ठाकुर के पार्षदों की अनेक स्मृति-कथाएँ संग्रह रखने का प्रयत्न किया है।

एक सन्ध्या के समय सूर्य महाराज ने कहा, ''एक दिन हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) से मैंने पूछा, 'महाराज, घर-द्वार, माँ-बाप सबको त्याग करके मठ में आया, परन्तु ईश्वर-दर्शन तो नहीं हुआ।' हरि महाराज ने उत्तर में कहा, 'देखो, ठाकुर कल्पतरु हैं। तुमलोग कल्पतरु के नीचे आये हुए हो। इस वृक्ष में फल लटक रहे हैं। इस पेड़ के नीचे पड़े रहने से एक-न-एक दिन फल अवश्य प्राप्त करोगे। फिर भी उस फल को यदि अभी प्राप्त करना चाहते हो, तो shake the tree, shake the tree (वृक्ष को हिलाओ, वृक्ष को हिलाओ) – जोर से उस वृक्ष पर धक्का दो। उससे फल शीघ्र मिलेगा।' यह धक्का देना ही हुआ तीव्र पुरुषार्थ।'' इस घटना ने मेरे मन पर एक अमिट प्रभाव डाला था।

सूर्य महाराज ने और एक दिन कहा था, ''हमने एक बार शरत महाराज से पूछा, 'महाराज, आपने श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग में लिखा है कि ठाकुर ने संन्यास-मन्त्र का उच्चारण तोतापुरीजी से संन्यास लेने के समय किया था।

ठाकुर ने क्या आप लोगों से कहा था कि उन्होंने वह सब मन्त्र उच्चारित किया था?' इसके उत्तर में शरत महाराज ने कहा, 'नहीं, ठाकुर ने वह सब मन्त्र हमलोगों को नहीं बताया, उन्होंने कहा था कि वे तोतापुरीजी से दशनामी सम्प्रदाय के अनुसार आनुष्ठानिक संन्यास ग्रहण किया था। यदि उन्होंने आनुष्ठानिक संन्यास ग्रहण किया था, तो निश्चय ही उन्होंने उन सब मन्त्रों का उच्चारण किया होगा।' ''

सूर्य महाराज ठाकुर के पार्षदों की बहुत-सी कथा-कहानियाँ हमें बता गये हैं, उनमें से कई पुस्तकों में प्रकाशित हो चुकी हैं। राजा महाराज के प्रसंग में बोलते समय वे बहुत भावुक हो जाते थे। उनकी गुरुभक्ति जितनी असीम थी, उतनी ही असीम थी उनकी कर्मक्षमता। कम उम्र में ही वे मठ-मिशन के न्यासी नियुक्त हुए थे।

दिसम्बर, १९७० ई. में मायावती से आने पर सूर्य महाराज ने एक दिन फोन करके मुझे बेलूड़ मठ में बुलाया। मेरे जाने पर उन्होंने कहा, ''देखो, हॉलीवूड आश्रम के लिए मैंने तुम्हारे नाम का प्रस्ताव रखा है। प्रभु महाराज यदि कुछ पूछते हैं, तो तुम 'ना' नहीं कहना।'' मैंने कहा, ''महाराज, अँग्रेजी में व्याख्यान देने का मेरा अभ्यास नहीं है। इसके अतिरिक्त अभी मेरी उम्र कम (३४ वर्ष) है और इसके साथ-ही-साथ अभी-अभी ही तो मेरा संन्यास हुआ है।'' उन्होंने कहा, ''तुम कुछ चिन्ता मत करो। प्रभवानन्द तुमको सब सीखा देगें। तुम अच्छी तरह से कर सकते हो। तन-मन से ठाकुर-स्वामीजी का कार्य करना।'' उन्होंने मुझे बहुत उत्साह दिया। मैं अद्वैत आश्रम वापस आ गया। तदुपरान्त न्यासी बैठक में मुझे हॉलीवूड भेजने के लिए निर्णय लिया गया।

स्वामी निर्वाणानन्द जी उन दिनों भुवनेश्वर में थे। मैंने उनका आशीर्वाद पाने के लिए पत्र लिखा, तो उसके उत्तर में १३/०२/१९७१ को उन्होंने मुझे लिखा : ''तुमने पिछली बार मुझे अपनी जो बातें बतायी थीं, वे सत्य ही बताई थीं, किन्तु उससे तुम्हारे अमेरिका जाने में कोई असुविधा होगी, ऐसी कोई बात मेरे मन में नहीं आती। तुमने किसी दिन अँग्रेजी में व्याख्यान नहीं दिया, इसलिए उस देश (अमेरिका) में जाने के लिए कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी। व्याख्यान ही साधु-जीवन का सर्वस्व नहीं है तथा प्रचार ही एकमात्र उपाय नहीं है। स्वामीजी के अतिरिक्त अन्य सभी का व्याख्यान अलोना मालूम होता है। Swamiji was an orator by divine right. (अर्थात् स्वामीजी एक दैवी अधिकारयुक्त वक्ता थे) इस तरह के महापुरुष के अतिरिक्त अन्य कोई व्याख्यान द्वारा लोगों का चैतन्य जागृत नहीं कर सकता है। वक्तृता द्वारा वक्ता की आध्यात्मिक शक्ति प्रकट होनी चाहिए। साधु-जीवन त्याग-तपस्या और साधन-भजन के ऊपर प्रतिष्ठित होना चाहिए और उस प्रकार के जीवन के सान्निध्य में आने से ही मनुष्य में धर्म-प्रेरणा जागृत हो सकती है। इस प्रकार के व्यक्ति का व्याख्यान किसी भी प्रकार का क्यों न हो, उसके मन की बात श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करेगी ही।

''तुम ठाकुर का कार्य करने के लिए अमेरिका में जा रहे हो। तुम स्वयं अनुभव कर पा रहे हो, अनेक बाधा-विघ्न तथा असुविधा के होते हुए भी एक वर्ष के उपरान्त तुम्हारा उस देश में जाने का निश्चय हुआ। यहाँ पर उनकी इच्छा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अन्त में, उस देश में जाने पर तुम उनके यन्त्र के रूप में कार्य करना। व्यक्तिगत लाभ का प्रयत्न, अपना-प्रभाव विस्तार और अहं-बुद्धि का विकास होने पर ही विशृंखला की उत्पत्ति होती है, इन सभी विषयों के प्रति सजग दृष्टि रखने से कोई भय नहीं रहेगा। ठाकुर, श्रीमाँ, स्वामीजी और महाराज के समीप मैं अपने हृदय की आन्तरिक प्रार्थना व्यक्त करता हूँ, जिससे वे सभी तुमको अपने यन्त्र के रूप में कार्य करा लें। उनलोगों के ऊपर दृढ़ विश्वास रखकर तुम उस देश में कार्य करोगे, तो बहुत आनन्द पाओगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। तुम्हारे लिए हताश, निराश या भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। निर्भीकता, उत्साह और उद्यम साधु-जीवन का विशेष गुण होता है, यह निश्चय जानना।''

स्वामी निर्वाणानन्द महाराज और गम्भीर महाराज (स्वामी गम्भीरानन्द जी) के साथ मैं एक ही हवाई जहाज में बेलूड़ मठ से (२७ मई, १९७१) मुम्बई गया। वहाँ पर ३१ मई को गेटवे ऑफ इण्डिया पर स्वामीजी का विशाल ब्राँज मूर्ति का उद्घाटन हुआ। उसके दूसरे दिन १ जून को मैं हालिवूड के लिए रवाना हुआ। उसके उपरान्त सूर्य महाराज के साथ पत्र के माध्यम से संवाद होता था। उन्होंने मुझे उपदेश देकर कई पत्र लिखे थे। उन्हीं में से कुछ-कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ –

२६/०७/१९७१ : ''अहंकार को मिटाने से ही किसी

भी कार्य में सफल हो पाओगे तथा भगवान से शक्ति प्राप्त होगी। यह मेरी स्वयं (अनुभव) की बात है, पुस्तक पढ़कर नहीं बोल रहा हूँ।''

१०/०८/१९७१ : ''तुमलोग वहाँ पर ठाकुर का कार्य करने के लिए गये हो – इस बात को एक मुहूर्त के लिए भी नहीं भूलना। सभी समय स्मरण-मनन करना। महाराज कहा करते थे – ऐसा कर सकने से यह ध्यान ही होता है, इस अवस्था में समाधि भी हो सकती है।

''और एक बात सदैव अपने मन में रखना, तुमलोग ठाकुर का कार्य करने के लिए वहाँ पर गये हो। उनके यन्त्र-रूप में कार्य करने का ही तुम्हारा अधिकार है, अन्त में इस क्षेत्र में 'मैं और मेरा' यह भाव सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो जाना चाहिए। मैं विश्वास करता हूँ कि उनकी कृपा से सब हो जायेगा।''

सूर्य महाराज ने स्वामी प्रभवानन्द जी को भी बहुत-से पत्र लिखे थे। वे सब पत्र मेरे पास हैं। बहुत ही मूल्यवान बातें और इतिहास उन पत्रों में है। सूर्य महाराज स्वामी ब्रह्मानन्द जी के सेवक थे और ठाकुर के कई शिष्यों के साथ घनिष्ठ सान्निध्य में थे। इसके अतिरिक्त, न्यासी होकर दीर्घकाल तक बेलूड़ मठ में ही निवास करते थे। इसके परिणामस्वरूप, उनके जीवन के साथ मठ-मिशन का अनेक इतिहास जुड़ा हुआ है।

एक दिन रात्रि कक्षा में उन्होंने हम सभी को कहा था, ''देखो, ठाकुर बहुत दयामय हैं। वे एक, दो, सौ, सहस्र बार क्षमा करते हैं, किन्तु एक बार यदि वे मुँह फेर लें, तो उसका त्रिभुवन में स्थान नहीं है। यदि एक व्यक्ति भी ठीक-ठीक ठाकुर को पुकारता है, तो संघ अच्छी तरह से चलेगा।'' **(क्रमशः)**

पृष्ठ २२१ का शेष भाग

अध्याय का सार-संक्षेप प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में अहिंसा दर्शन और गीता, गीता-सार 'जीवन रहस्य' से इस पुस्तक में संयुक्त हैं। अन्त में प्रभु से प्रार्थना की गई है। स्वामीजी ने गीता की आध्यात्मिक व्याख्या के साथ-साथ इसकी राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भी कहीं-कहीं प्रासंगिक व्याख्या की है। इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम पूज्य स्वामी संवित सोमगिरि जी का आशीर्वचन सम्पादक के मंगल के साथ-साथ ग्रन्थ के अध्येताओं के लिये भी शिवप्रद है।

'राष्ट्रीय समस्या और समाधान' नामक पुस्तक में लेखक ने डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के प्रथम तीन खंडों, चतुर्थ और पंचम खंडों की सम्पादकीय को संयुक्त किया है। उसके बाद बहुत-से राष्ट्रीय, पर्यावरण और महान पुरुषों से सम्बन्धित रचनाएँ हैं, जिसे पढ़कर पाठक अपना ज्ञानवर्धन कर सकेंगे और यथार्थ तथ्यों से अवगत हो सकेंगे। ○○○

पृष्ठ २३२ का शेष भाग

माँ लक्ष्मी समझकर अर्जन करो। धन हमको सुविधायें देता है, इसलिए उसका अर्जन करो। अपनी आवश्यकता से अधिक धन से गरीबों की सेवा कर सम्पत्ति का सदुपयोग करो तो पुण्य मिलेगा। वह पुण्य जीवन के विकास में सहायता करेगा।

इसलिए सच्चाई से धन कमाकर आराम से शान्तिपूर्वक जीवन बताओ। अपना मन ठीक रखने के लिए भगवान से नित्य प्रार्थना करो, तब तुम संसार में सुखी रहोगे। ○○○

पृष्ठ २३५ का शेष भाग

के श्लोकों में बता दिया। खेत की मेड़ से पिता और पुत्र जा रहे हैं, पुत्र ने पिता का हाथ पकड़ा है और अचानक पुत्र ने देखा कि नीले आकाश में झुंड में सुन्दर-सुन्दर सफेद बगुले उड़ रहे हैं। बच्चे को इतना अच्छा लगा कि दोनों हाथ पीटता हुआ ताली बजाने लगता है। पिता का हाथ छोड़ दिया, मेड़ से तभी गिर पड़ता है, चोट आ गई, रोने लगता है। पिता उसे गोद में उठाता है, दुलार करता है, पुचकारता है। लड़का चुप हो गया, पिता ने गोद से नीचे उतार दिया। फिर दोनों के दोनों चलने लगते हैं। अब पिता स्वयं ही पुत्र के हाथ को पकड़ लेता है। अब वह पुत्र कितना भी नाचे, कितना भी कूदे, कितना भी वह इधर-उधर करता रहे, अब वह नहीं गिरेगा, क्योंकि पिता ने ही पुत्र का हाथ पकड़ लिया है। अर्जुन ! जिसने इस प्रकार मेरे हाथ में अपनी पकड़ दे दी, उसका नाश कभी नहीं होता, यह भगवान साक्षात् प्रतिज्ञा करते हैं। **(क्रमशः)**

हरिद्वार नगर निगम ने ७ दिसम्बर, २०२० को **रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, कनखल** के चिकित्सालय को, हरिद्वार को स्वच्छ एवं हरा-भरा बनाने में योगदान प्रदान करने के लिए प्रशंसा प्रमाण-पत्र प्रदान किया। हमारा चिकित्सालय हरिद्वार के सभी स्वास्थ्य केन्द्रों में प्रथम स्थान पर रहा।

अद्वैत आश्रम, मायावती ने **'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका की १२५वीं वर्षगांठ** के अवसर पर, जनवरी, २०२१ में विशेषांक प्रकाशित किया। ३१ जनवरी को यू-ट्यूब के माध्यम से ऑनलाइन कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें रामकृष्ण मठ-मिशन के **परमाध्यक्ष परम पूज्य स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज,** महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज, उपाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्दजी जी महाराज, सम्माननीय **प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी** एवं अन्य लोगों के रिकार्ड किये गये व्याख्यान प्रसारित किये गये।

रामकृष्ण मिशन विद्यालय, कोयम्बटुर स्थित (RKMVERI) डीम्ड यूनिवर्सिटी के ऑफ कैम्पस में ३ फरवरी, २०२१ को १५वाँ दीक्षांत समारोह आयोजित किया गया। कुल २१० उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को प्रमाण एवं डिग्रियाँ प्रदान की गईं। तमिलनाडु के राज्यपाल श्री बनवारी लाल पुरोहित एवं महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने रिकार्ड किये गये वीडियो मैसेज द्वारा विद्यार्थियों को सम्बोधित किया।

छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री **श्री भूपेश बघेल** ने १० फरवरी, २०२१ को रायपुर में आयोजित एक कार्यक्रम में **रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर** विद्यालय की एनसीसी अध्यापिका, सुश्री सीता केवट को बेस्ट एसोसिएट एनसीसी ऑफिसर (ANO) पुरस्कार प्रदान किया, जिसमें उन्हें मेडल, प्रमाण पत्र और ५०,००० (पचास हजार रुपये) प्रदान किये गये।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री, **श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक'** ने १९ फरवरी, २०२१ को **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय** (RKMVERI) बेलूड़ का परिदर्शन किया।

आदर्श शिक्षा एवं युवा कार्यक्रम

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली ने २६ जनवरी से २५ फरवरी तक १२ ऑनलाइन कार्यशाला एवं एक वेबिनार का आयोजन किया। इन कार्यक्रमों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों से कुल ६५७ शिक्षकों, प्राचार्यों, विद्यार्थियों एवं उनके अभिभावकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, मदुरै ने २ फरवरी, २०२१ को महाविद्यालयीय विद्यार्थियों के लिए आदर्श शिक्षा कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें ९० विद्यार्थियों ने भाग लिया।

राहत कार्य – संक्षिप्त विवरण (मार्च २०२१)

कोविड – १९ राहत कार्य : दक्षिण अफ्रिका: फिनीक्स केन्द्र ने कोविड-१९ महामारी राहत-कार्य को जारी रखते हुए फरवरी माह में १७०० किलो चावल, २०० किलो मकई, १२५ किलो आटा, २०० किलो पौष्टिक अन्न, ५६ किलो नूडल्स, १००० किलो दाल, २५०० किलो विभिन्न सब्जियाँ, ८५ किलो विभिन्न मसाले, ३२५ किलो नमक, १२ लीटर खाद्य तेल, ७०० डिब्बाबंद भोजन, ३० किलो सूप पाउडर, २०,००० टी-बैग, २७५ किलो चीनी, ३५० लीटर दूध, २०० किलो दूध पाउडर, २० किलो बिस्कुट, १०० ब्रेडपीस, १५० केक, ४४९४ पैकेट नाश्ता, १७ लीटर फल-रस, ३६ बाल स्नैक पैकेट, ४०० माचिस डीबिया, २०० ट्यूब दंतमंजन, ८०० साबुन टिकिया, ४२० व्यस्क-नैपकिन एवं ४३३ लीटर डिटर्जेन्ट का वितरण किया। केन्द्र ने ८ परिवारों में सप्ताह में तीन बार १ लीटर दूध एवं पाव रोटी का वितरण किया। इसके अतिरिक्त आश्रम के चिकित्सालय ने ३ रोगियों हेतु ३२ डायलेसिस सत्र आयोजित किये एवं स्वास्थ्य कर्मियों एवं अधिकारियों के लिए परामर्श सेवाएँ प्रदान कीं ।